❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ६ } गौराब्द ४७५, मास—विष्णु १२, वार—प्रद्युम्न } संख्या ९—१०
मंगलवार, ३० फाल्गुन, संवत २०१७, १४ मार्च १९६१

श्रीश्रीचैतन्याष्टकम्

[श्रीमद् रूप-गोस्वामि-विरचितम्]

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः

कलौ यं विद्वांसः स्फुटमभियजन्ते द्युतिभरादकृष्णाङ्गं कृष्णं मखविधिभिरुत्कीर्तनमयैः ।
उपास्यं च प्राहुर्यमखिल-चतुर्थाश्रमजुषां, स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ १ ॥

चरित्रं तन्वानः प्रियमघवदाह्लादन-पदं जयोद्घोषैः सम्यग् विरचित-शची-शोकहरणः ।
उदंचन्मार्तण्ड द्युतिहर-दुकूलाञ्चित-कटिः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ २ ॥

अपारं कस्यापि प्रणयि-जनवृन्दस्य कुतुकी रसस्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः ।
रुचिं स्वामावव्रे द्युतिमिह तदीयां प्रकटयन् स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ३ ॥

अनाराध्यः प्रीत्या चिरमसुरभाव-प्रणयिनां प्रपन्नानां देवीं प्रकृतिमधिदैवं त्रिजगति ।
अजस्रं यः श्रीमान् जयति सहजानन्द-मधुरः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ४ ॥

गतिर्यः पौण्ड्राणां प्रकटित-नवद्वीप-महिमा भवेनालं कुर्वन् भुवन-महितं श्रोतियकुलम् ।
पुनात्यङ्गीकाराद्भुवि परमहंसाश्रम-पदं स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ५ ॥

मुखेनाग्रे पीत्वा मधुरमिह नामामृत-रसं दृशोर्द्वारा यस्तं वमति घन-बाष्पाम्बु-निपतः ।
भुवि प्रेम्नस्तत्त्वं प्रकटयितुमुल्लसित-तनुः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ६ ॥

तनुमाविष्कुर्वन् नवपुरट-भासं कटिलसत्करङ्कालंकारस्तरुण-गजराजाञ्चित-गतिः ।
प्रियेभ्यो यः शिक्षां दिशति निजनिर्माल्यरुचिभिः स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ७ ॥

स्मितालोकः शोकं हरति जगतां यस्य परितो गिरान्तु प्रारंभः कुशलपटलीपल्लवयति ।
पदालंभः कम्बा प्रणयति नहि प्रेम-निवहं स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ८ ॥

शचीसूनोः कीर्त्तिस्तवक-नवसौरभ्य-निबिड़ं पुनन्तु यः प्रीतात्मा पठति किल पद्याष्टकमिदम् ।
स लक्ष्मीवानेतं निजपद-सरोज प्रणयितां ददानः कल्याणीमनुपदमबाधं सुखयतु ॥ ९ ॥

—:०:—

अनुवाद—

कलियुगमें पण्डितजन हरिनाम संकीर्तनमय यज्ञ द्वारा जिनकी उपासना करते हैं, जो कृष्णवर्ण के होने पर भी श्रीमती राधाके भाव-कान्ति लेकर गौरवर्ण हुए हैं एवं पण्डितजन जिनको चतुर्थाश्रमी-संन्यासियोंको भी उपास्य बतलाते हैं वे चैतन्याकृति संकीर्तन पिता श्रीगौरहरि हम पर अतिशय कृपा करें ॥ १ ॥

जिन्होंने शान्तिपुर धामके मार्ग-मार्गमें तथा प्रत्येक भक्तके घरमें गोपियोंके आनन्दकर अपना चरित्र अर्थात् हरिनाम संकीर्त्तन करते-करते 'प्राणनाथ श्रीकृष्णचन्द्रकी जय हो'—इस प्रकार घोषणा द्वारा पुत्रशोकमें विह्वल हुई शचीदेवीका शोक दूर किया था और जिनका कटिप्रदेश नवोदित अरुण-वर्णके वस्त्रसे सुशोभित है, वे चैतन्याकृति श्रीशचीनन्दन हम पर अत्यधिक कृपा करें ॥ २ ॥

जिन्होंने उन्नतोज्ज्वल मधुर-रस या श्रीराधाकी प्रणय महिमा इत्यादिका आस्वादन करनेके लिये वृषभानुनन्दिनीके अपार माधुर्य-भावको चुरा कर एवं उनकी कान्ति अङ्गीकार कर अपना रूप गोपन कर लिया था, वे चैतन्याकृति राधा-भाव-द्युति सुवलित श्रीगौरांगदेव हम पर प्रचुर कृपा करें ॥ ३ ॥

जो असुरभावापन्न तामसिक देवोपासक ब्राह्मणों के उपास्य नहीं होनेपर भी जगत्में सत्त्वगुण प्रधान देवभावापन्न ब्राह्मण कुलके एक मात्र आराध्य हैं एवं जो स्वाभाविक आनन्दमय और मधुर मूर्त्तिमें इस जगतमें सर्वोत्कृष्टरूपमें विराजमान हैं, वे चैतन्याकृति ब्रह्मण्यदेव श्रीशचीनन्दन गौरहरि हमपर अत्यधिक दया करें ॥ ४ ॥

जो पुण्ड्रदेशीय अर्थात् नवद्वीपके दक्षिण-स्थित कुलीन ग्रामवासी भक्तोंका उद्धार करनेवाले हैं, जिन्होंने श्रीनवद्वीपका माहात्म्य विशेष रूपसे फैलाया है, जो नवद्वीपमें वैदिक ब्राह्मणकुलमें आविर्भूत होकर भुवनपूज्य उस वंशको उज्ज्वल किये हैं एवं जिन्होंने परमहंस आश्रम-सन्यास अंगीकार करके भक्ति शिक्षा द्वारा उस आश्रमको पवित्र किया है। वे चैतन्याकृति यतिराज-वन्दितपद श्रीनवद्वीपचन्द्र हम पर प्रचुर कृपा करें ॥ ५ ॥

जो पहले-पहल श्रीमुख द्वारा हरिनामरूप अमृत-रसका पानकर निरन्तर अश्रुविसर्जनका छलकर

नेत्रोंके द्वारा मानों उस रसको बाहर कर रहे हैं एवं जगतमें प्रेम-तत्त्वकी शिक्षा देनेके लिये जिनका कलेवर सर्वदा उल्लसित रहता है, वे चैतन्याकृति नाम प्रेम प्रदाता श्रीमन्महाप्रभुजी हम पर सविशेष दया करें ॥ ६ ॥

तपाये हुए सोनेकी तरह जिनकी श्रीअंगकान्ति है, जिनका कटिदेश करंगरूप अलंकार द्वारा सुशोभित है, तरुण गजराजकी तरह जिनकी सुन्दर चाल है एवं स्वयं प्रीतिपूर्वक भगवत-प्रसाद-निर्माल्यादि ग्रहणकर महाप्रसादका माहात्म्य और प्रपंच-जयका विषय अपने भक्तोंको शिक्षा दे रहे हैं, वे चैतन्याकृति अखिललोक शिक्षक श्रीगौरहरि हम पर प्रचुर कृपा करें ॥ ७ ॥

जिनका ईषद्-हास्ययुक्त कृपा-कटाक्ष सबका संताप हर लेता है, जिनकी मधुर वाणी जगत्का कल्याण करती है, जिनके श्रीचरणकमलोंका आश्रय करनेसे सब लोग कृष्णप्रेम पा लेते हैं, वे चैतन्याकृति सर्व-लोक-संतापहारी मंगलायतन श्रीगौरहरि हमपर प्रचुर कृपा करें ॥ ८ ॥

श्रीशचीनन्दनकी कीर्त्ति-कुसुमावलीके मनोहर सौरभसे परिपूर्ण इस पद्याष्टकका जो प्रेमपूर्वक पाठ करते हैं, लक्ष्मीपति श्रीशचीनन्दन गौरहरि उनको अपने कल्याणकारी श्रीचरणकमलोंमें आश्रय प्रदान-कर सुखी कर देते हैं ॥ ९ ॥

——:०:——

श्रीरामानुजाचार्य

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ६, संख्या ७-८, पृष्ठ १४५ से आगे]

श्रीकांचीपुरीके पूरबमें अग्रहार नामक एक गाँव है। श्रीरामानुजके समयमें वह गाँव बड़े-बड़े पण्डितोंका आवासस्थल था। उसी गाँवमें रामानुज-के बहनोई अनन्तदीक्षित रहते थे। अनन्तदीक्षितने पहली पत्नीकी मृत्युके पश्चात रामानुजकी बहन श्रीलक्ष्मीदेवीके साथ विवाह किया था। इन लक्ष्मी-देवीके गर्भसे एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम दाशरथि रखा गया। दाशरथि बचपन से ही बड़े होनहार थे। कुछ बड़े होने पर दाशरथिने अपने मामा श्रीरामानुजाचार्यका अलौकिक प्रभाव देख-सुनकर काँचीपुरीमें श्रीरामानुजके पास आकर उनके शिष्य हो गये और उनके साथही रहने लगे। लक्ष्मीकी सौत महादेवीके पुत्र कुरनाथने भी श्रीरामा-नुज का चरणाश्रय ग्रहण किया। श्रीरामानुज सम्प्रदाय में श्रीकुरनाथको श्रीरामचन्द्रका अंश तथा दाशरथि को भरतजीका अंश माना गया है। श्रीरामानुजने दोनोंको शास्त्रादिकी शिक्षा प्रदानकर शिष्यके रूपमें ग्रहण किया था।

कांचीमें रहते समय यादवाचार्यकी माता यति-वर श्रीरामानुज आचार्यकी प्रखर प्रतिभा और आश्चर्यजनक ऐश्वर्यको देखकर बड़ी ही प्रभावित हुई। उन्होंने अपने पुत्र यादवके निकट श्रीरामानुज की आश्चर्यजनक प्रतिभाका वर्णनकर परामर्श दी कि वह रामानुजके साथ शत्रुता और हिंसा-द्वेषका भाव छोड़कर उनका (रामानुजका) पदाश्रय करे ऐसा करना उसके लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी। उन्होंने और कहाकि कांचीपूर्ण आदि बड़े बड़े वैष्णव महात्मागण श्रीरामानुजके आलोक-सामान्य गुणोंको देखकर उनको भगवत् पार्षद मानकर पूजते हैं। यदि

ब्राह्मणके निखिल सदाचार और विद्वता श्रीविष्णुके सेवामें अर्पित न हो, तो वह सदाचार और विद्वता केवल व्यर्थका श्रममात्र है। भगवान विष्णु ही सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र रचयिता और पालनकर्त्ता हैं। रुद्र आदि देवता उन्हींसे शक्ति संचरित होकर प्रलय आदि करते हैं।

माताके इन उपदेशोंको सुनकर यादवाचार्य बोले—'माँ! आप जो कुछ कह रही हैं वह सत्य है और मेरे लिये कल्याणप्रद है। फिर भी मुझे एक बार पृथ्वीका प्रदक्षिण कर आपके वचनोंकी यथार्थता स्वयं उपलब्धि करनी पड़ेगी। इस समय मैं कुछ अस्वस्थ हूँ। अतः भू-परिक्रमा अभी तुरन्त संभव नहीं है।'

यादवाचार्यकी बात सुनकर माताजीने फिर कहा—'बेटा! मुक्ति-जालका सहारा छोड़ो, परमार्थके विषयमें जड़ीय तर्क-युक्ति सर्वथा पङ्गु है। तुम लज्जा छोड़कर रामानुजके पास जाओ और श्रद्धापूर्वक उनकी प्रदक्षिणा करो। ऐसा करने से तुम्हारा भव रोग निश्चयही दूर हो जायगा। मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है सम्पूर्ण पृथ्वीका प्रदक्षिण करने का जो फल होता है, वे सभी फल श्रीरामानुजकी प्रदक्षिणासे ही तुम पा लोगे।'

माताके वचनरूप भूचालसे यादवाचार्यके पूर्व संग्रहीत कुसिद्धान्त-समूहकी दृढ़ दीवालमें दरार पड़ गयी। वे माताके वचनों पर जितना ही गहरा विचार करते, उनके पूर्व सिद्धान्तसमूह निराधार और सार-हीन दीख पड़ने लगे। अन्तमें वे अपने विचारोंके प्रति संदिग्ध होकर यथार्थ तत्त्वकी खोजमें श्रीरामानुजके पास उपस्थित हुए। उस समय श्रीरामानुजाचार्य वरदराजके मठमें रहते थे। यादवाचार्यने श्रीरामानुजको देखते ही पूछा—'रामानुज! तुमने अपने शरीरमें शंख-चक्र और ऊर्द्धपुण्ड्र तिलक आदि क्यों धारण कर रखा है? ब्रह्म तो निर्गुण हैं, तुम उनको सगुण सिद्ध करनेका प्रयत्न क्यों करते हो? इन शास्त्र-विरुद्ध असदाचारोंको तुमने किस शास्त्रमें पाया है?' यादवाचार्यके प्रश्नोंको सुनकर श्रीरामानुजने अपने शिष्य कुरेश (कुरनाथ) को उपरोक्त प्रश्नोंका शास्त्रीय प्रमाणके साथ उत्तर देने की आज्ञा प्रदान की। आचार्यकी आज्ञा पाते ही कुरेश विभिन्न शास्त्रोंके प्रमाण यादवाचार्यके सामने एकके बाद दूसरा इस प्रकार बोलने लगे कि केवल यादवाचार्य ही नहीं, उपस्थित सारी विद्वन्मण्डली भी विस्मित हो गयी। यादवाचार्य मंत्रमुग्ध होकर सुनने लगे।

कुरेशने श्रीरामानुजको प्रणाम कर कहना आरम्भ किया—'श्रुति-स्मृति, पुराण, इतिहास तथा पंचरात्र आदि सभी शास्त्रोंमें शंख, चक्र और ऊर्द्धपुण्ड्रादि धारण करनेकी विधि दी गयी है तथा ब्रह्मको सर्वत्र ही सगुण बतलाया गया है। मैं विभिन्न शास्त्रोंसे इस कथनका प्रमाण उपस्थित कर रहा हूँ।

श्रुतिका प्रमाण देखिये--

प्रतप्ते विष्णोरङ्गचक्रे पवित्रे
जन्माम्भोधिवर्तवेचघनीन्द्राः।
मूले बाह्वोर्दधतेन्ये पुराणाः
लिंगान्यङ्गे तावकान्यर्पयन्ति॥

साग्नि पवित्रमित्याग्निः। अग्निर्वैसह स्रारोः सहस्रारो नेमिः। नेमिना तप्ततनुर्ब्राह्मनः। सायुज्यं सलोकतामाप्नोति देवासो ये विधृतेन बाहुना सुदर्शनेन प्रयतमानवो लोकसृष्टिं वितन्वन्ति ब्राह्मणास्तद्वदन्ति अग्निना वै तप्तं द्विभुजेधार्यं ऊर्ध्वपुण्ड्रमालिरयेत्। तस्माद्विरेखं भवति न पुनरागमनमेति ब्रह्मनः सायुज्यं सालोकतामाप्नोति। चक्रं बिभर्त्ति वपुषा प्रतप्तं बलं देवानाममितस्य विष्णोः। स एति नाकं दुरिता विधूय प्रयास्ति यद्यतयो वीतरागाः॥ अथर्वावने। एभिर्वायमुरुक्रमस्यचिह्नैरङ्किता लोके सुभगाभवामः। तद्विष्णोः परमं पदं येधिगच्छन्ति लांछिताः॥

पराशर संहितायां—

उपवीतादिवद्धार्याः शंखचक्रादयस्तथा।
ब्राह्मणस्य विशेषेन वैष्णवस्य विशेषतः॥

श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि—

ब्राह्मनैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्च कृतलक्षनैः ।
अर्चनीयश्च वन्द्यश्च नित्ययुक्तैः स्वकर्मसु ॥

हारीते—

तापादि पंच संस्कारी महाभागवतोत्तमः ।
अन्येत्ववैष्णवा ज्ञेया हीनास्तापादिभिर्जनाः ॥
विना यज्ञोपवीतेन विना चक्रस्य धारणात् ।
विनाद्वयेनवै विप्रश्चण्डालत्वमवाप्नुयात् ॥

वामने—

श्वपाकमिव वीक्षेत लोके विप्रमवैष्णवं ।
वैष्णवो वर्णबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम् ॥

लैंगे—

अष्टाक्षरविदः सर्वे तस चक्रांकितास्तदा ।
सेवका वासुदेवस्य तथैव नट-नर्तक ॥
अन्ये च वैष्णवास्तत्र सर्वे चक्रेन लंछिताः ।
अग्निनैव तु सन्तप्तं चक्रमादाय वैष्णवः ॥
दाहयेत् सर्ववर्णानां विष्णु सालोक्य-सिद्धये ।

कठवल्यां ऊर्द्ध्वपुण्ड्र विधि—

धृतोर्द्ध्वपुण्ड्रः कृतचक्रधारी विष्णुं
परं ध्यायति यो महात्मा ।
स्वरेण मंत्रेण सदा हृदिस्थं
परात्परं यमनृतो महान्तम् ॥

स्कन्धे—

येषां चक्रांकितं गात्रं शूद्रेष्वपि च दृश्यते ।
ते वै स्वर्गस्य नेतारो ब्राह्मणा भुविदुर्लभाः ॥

अथर्वनोपनिषदि—

हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय
मध्येछिद्रमूर्द्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति ।
स परस्य श्रियो भवति स पुन्यवान्
भवति स मुक्तिवान् भवति ॥

महोपनिषदि—

धृतोर्द्ध्वपुण्ड्रः परमेशितारं नारायणं सांख्ययोगाभिगम्यं ।
ज्ञात्वा विमुच्यंत नरः समस्तैः सांरसापाशैरिहचैति विष्णुम् ॥

आग्नेय—

त्रिपुण्ड्र धारणं विप्रो लीलयापि न कारयेत् ।
धारयेद्विविना सम्यगूर्द्ध्वपुण्ड्रं प्रयत्नतः ॥

ब्रह्माण्डे—

ब्राह्मनस्योर्द्ध्वपुण्ड्रन्तु क्षत्रियस्याद्धचन्द्रकं ।
वैश्यस्य वर्तुलोकारं शूद्रस्यैव त्रिपुण्ड्रकम् ।
ब्राह्मणेन न कर्त्तव्यं तिर्यक् पुण्ड्रस्य धारणात् ॥

ब्रह्मरात्रे—

प्रणवेनैव मन्त्रेण मृदा वै मामनुस्मरन् ।
ललाटे धारयेन्नित्यं मम सायुज्यमाप्नुयात् ॥

वाशिष्ठे—

नासिकामूलमारभ्य आकेशान्तं प्रकल्पयेत् ।
अंगुलं पार्श्वमेकन्तु ऊर्द्ध्वपुण्ड्रस्य लक्षणम् ॥ स्मृतौ ॥

सनत्कुमार-संहितायां—

ऊर्द्ध्वपुण्ड्रं मृदाधार्यं सच्छिद्र सौम्यमेव च ।
तदलंकरणार्थाय हरिद्रां धारयेच्छ्रियम् ॥
ऊर्द्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु अन्यद्रव्यं न धारयेत् ।
हरिद्रां धारयेच्चूर्णं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
अच्छिद्रमूर्द्ध्वपुण्ड्रन्तु ये कुर्वन्ति द्विजाधमाः ।
तेषां ललाटे सततं श्वान पादो न संशयः ॥

पाद्मे—ये कण्ठलग्न तुलसीत्यादि—

ईश्वर संहितायां—

विष्णुदेह-परामृष्टं यच्चूर्णं शिरसावहेत् ।
सोश्वमेधफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते ॥
सान्तरालोर्द्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये श्रीशस्य धामनि ।
हरिद्रासारसंभूत रजसा धारयेच्छ्रियम् ॥

पराशरे—

एकोपवीतं धार्यं स्यात् यतीनां ब्रह्मचारिणां ।
गृहस्थानां वनस्थानामुपवीतोभयं स्मृतम् ॥

पंचरात्रे—

कापाय वस्त्रयुग्मं च वेणु यष्टिं च धारयेत्
कोपीनं कटिसूत्रं च छत्रं ताम्र-कमण्डलुम्
छिद्रोर्द्ध्वपुण्ड्रमेकं वा तथा द्वादशमेव वा ।
तुलसी नलिनाक्षाणां माकालिधारणं तथा ।
भुजयोर्गुरूणासम्यक् शंखचक्रं च धारयेत् ॥

उपरोक्त श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त प्रमाणोंको सुन कर यादवाचार्य बड़े विस्मित हुए। शास्त्रोंमें शंख-चक्रादि धारण करनेके पक्षमें ऐसी निःसन्देह और स्पष्ट आज्ञा हो सकती है—यादवाचार्यको इससे पहले ऐसी धारणा नहीं थी। हो भी कैसे सकती थी; वे तो शांकरी वेदान्तमें तत्कालीन पण्डितोंके नेता होकर ब्रह्मकी निर्गुणता स्थापनकी युक्तिमें ही अन्ध थे। उन सरीखे प्रकाण्ड मायावादीको ईश्वर-उपासना एक बालोचित क्रीड़ाके सिवा और क्या प्रतीत हो सकती थी। वे ऐसा समझते कि श्रीवैष्णवोंके सभी व्यवहार मायिक, मिथ्याकल्पित और अज्ञताप्रसूत हैं। कुरेशका अपार शास्त्र-ज्ञान देखकर यादवाचार्य को फिरसे पूर्वपक्ष उठानेका साहस नहीं हुआ। परन्तु भीतर ही भीतर वे छल-बलसे या शास्त्रीय वचनोंका कदर्थकर किसी प्रकार भी विपक्षको पराजित करना चाहते थे। अतएव उन्होंने कुरेशको दिखावटी नम्रताके साथ शास्त्रीय प्रमाणोंके बल परब्रह्म का सगुणत्व प्रतिपादन करनेके लिये अनुरोध किया।

कुरेशाचार्य फिर विभिन्न शास्त्रोंसे ब्रह्मके सगुणत्वका प्रमाण देने लगे। उन्होंने सर्ववेद शिरोमणि उपनिषद्से 'सर्वज्ञ सर्ववित्' 'परास्य शक्तिर्विविधैव' 'सवीर्य शक्त्यादिगुणैकराशिः' 'अपहृत पापमा विज्वरो विमृत्युः सत्यकामः सत्यसंकल्पः', 'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं' 'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशिनीशौ', 'नित्यो नित्यानां', 'नारायण परब्रह्म', 'एको ह वै नारायण आसीत्' आदि अगणित प्रमाणों को उद्धृत कर उनके द्वारा यादवाचार्यको मायावादके गढ़ेसे उठानेका प्रयत्न किया। महाभारत, विष्णुपुराण आदि वेदानुग ग्रन्थोंसे भी भूरि-भूरि प्रमाण दिखलाकर सविशेष ब्रह्मकी उन्होंने स्थापना की।

इस बार यादवाचार्यकी आँखें खुलीं। उनका सारा संदेह जाता रहा। कुतर्ककी भावना जाती रही। मायावादसे शुष्क हुए उनके हृदय-प्रङ्गण में श्रीवैष्णव-सिद्धान्तके प्रति विश्वास रूप सुशीतल वारिधारा प्रवाहित होनी आरम्भ हुई। उनको अपने पूर्व जीवनसे बड़ी ही घृणा हो गयी। वे उस दिन वहाँ पर अधिक देर तक न ठहर कर चुपचाप अपने घर लौट गये।

श्रीवैष्णवोंके अप्रकृत व्यवहार और ब्रह्मके सविशेषत्वने अब उनके हृदय पर अधिकार जमा लिया। उन्होंने औपाधिक परमात्मा, मायाकल्पित ब्रह्माण्ड और निर्विशेष ब्रह्म आदि कुसिद्धान्तोंकी मायिक युक्तियोंकी अकर्मण्यता और असारता उपलब्धि कर भगवत्-चरणोंका स्मरण करते-करते सो गये। उस समय स्वप्नमें भगवानने यादवके सामने अपना ऐश्वर्य-प्रकाश कर उनको अपना नित्य चिद्वैचित्र्य (अपना नित्य अप्राकृतरूप आदि) दिखलाया तथा उनको श्रीरामानुजके चरणोंमें आश्रय ग्रहण करनेके लिये उपदेश भी प्रदान किया।

—ओं विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती

---o---

गुणवती राधा

सुनो सखी राधे चतुर सुजान।
मोहे कान्हा मधु चितवन सों, भूल गये ठकुरान
जो हरि ठगत फिरैं त्रिलोकहिं, ठगे मधुर मुसकान।
मान करावत जो जग सारे, तिनसों करत गुमान॥
राधाकी चितवन अति भोली, लुभ गये मदन लुभान।
वृषभानुनन्दिनी दास स्वामिनी, सम नहीं कोऊ महान॥

—श्रीसत्यपाल ब्रह्मचारी

वैराग्य

वैराग्य किसे कहते हैं ? वह किस विशेष उपाय से साधित होता है ? क्या यह भक्तिका एक अङ्ग है अथवा उसका चरम फल है ? ज्ञानके साथ इसका क्या सम्बन्ध है ? क्या वैराग्य एक प्रकारका कर्म है ? वैराग्य होनेसे ही क्या जीवको सब कुछ मिल गया ? क्या यह वैष्णवधर्मका प्रधान अङ्ग है ?

ज्ञानमार्गीय लोग वैराग्यका बहुत ही अधिक आदर करते हैं। यहाँ तक कि वे वैराग्यको जीवनका चरम फल मानते हैं। ज्ञानका स्वभाव है—विवेक। उनका कथन है कि जिस समय जीवका विवेक उदय होता है, उसी समय उसके हृदयमें विराग प्रवेश करता है। जीव संसारमें मोहित होकर भोगोंको भोगनेमें ही मस्त है। परन्तु कोई ठेस लगने पर जिस समय वह संसारकी गति पर गाढ़े रूपसे विचारकर विवेक बुद्धि द्वारा यह स्थिर करता है कि संसार ध्वंश ही प्रयोजन है, क्योंकि उसीसे जीवकी मुक्ति होती है, उस समय उसके हृदयमें संसारके प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, उसका संसार छूट जाता है तथा निर्वाण मुक्ति प्राप्त होती है।

कर्ममार्ग पर चलनेवाले सांसारिक भोगोंका ही अधिक माहात्म्य बतलाते हैं। वे जैमिनी ऋषिका मत अनुसरणपूर्वक कहते हैं कि जीवोंके लिये संसारके प्रति वैराग्यकी कतई भी आवश्यकता नहीं है। वैराग्यके अधिकारी केवल अन्धे, बहरे, लंगड़े-लूले व्यक्ति ही हैं, क्योंकि ये असमर्थ हैं।

ज्ञानमार्गी तथा भक्तिमार्गीय मानव वैराग्यका इतना अधिक आदर करते हैं कि वे संसार और वैराग्यका अलग-अलग दो स्थिति स्थिर कर उस विषयमें विशेष-विशेष प्रक्रिया भी निर्दिष्ट किये हैं। अतएव प्रत्येक मार्गकी प्रक्रियामें बहुतसे विधि-निषेधोंकी व्यवस्था परिलक्षित होती है। दत्तात्रेय और शंकराचार्य आदि ज्ञानमार्गके नेता-महात्माओं ने शास्त्र-वचनोंका अवलम्बन कर वैराग्यके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी व्यवस्थाओंको लिपिबद्ध किया है। उन-उन नेता-महात्माओंकी व्यवस्थाके अनुसार दसनामी संन्यासी, कानफटा योगी तथा गोरखनाथी संन्यास-प्राय-व्यक्ति विभिन्न प्रकारके वेशोंमें संसार में भ्रमण करते हैं। दण्डी और मुण्डी आदि नाना प्रकारके वेशधारियोंका उन दलोंमें भारी सम्मान है। लिंग (वैराग्य-चिन्ह) ही उनमें धर्मका चिन्ह माना जाता है। अधिकांश क्षेत्रमें यह देखा जाता है कि वे यह भी नहीं जानते कि चित्तका वैराग्य क्या बला है। बाहरीवेश देखकर ही उन-उन मतोंसे संसारी व्यक्ति उनके दर्शनसे कृतकृतार्थ होकर दण्डवत्-प्रणाम करते हैं तथा उनकी विभिन्न प्रकारसे सेवा करते हैं।

भक्ति मार्गमें भी वैराग्यका आदर देखा जाता है। विशिष्टाद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी और द्वैतवादी वैष्णवोंमेंसे अनेकों वैराग्य-चिन्ह धारणकर विचरण करते हैं। ज्ञानमार्गियोंकी भांति इनमें भी मठ, शिष्य-संग्रह और विधि-निषेधकी साज सर्वत्र ही दीख पड़ती है। मठाधीश बनकर अनेक व्यक्ति विराट सम्पत्तिके मालिक भी हो पड़े हैं। वे एक राजाकी तरह विराट ऐश्वर्यशाली होते हैं—शानसे रहते हैं, यान-वाहनमें बड़े ठाट-बाटसे चलते हैं, अनेकों शिष्योंको शिक्षा देते हैं, बहुतोंको भोजन और वस्त्र देकर बड़े सम्मानसे रहते हैं। अनेक क्षेत्रमें ऐसा देखा जाता है कि वास्तविक वैराग्य न रहने पर भी वे वैरागीका सम्मान पाते हैं तथा अनेकोंका दण्डवत्-प्रणाम पाते हैं। संसारीका

केवल एक चिन्ह अर्थात् विवाहिता स्त्री न रहनेसे ही उनका धर्म ठीक रहता है और वैरागीके रूपमें पूजा पाते हैं। विवाहिता स्त्रीकी जगह कौपीन ही उनका प्रधान धर्म-चिन्ह होता है। विषयासक्ति, मुकदमा, दूसरेके प्रति ईर्ष्या-द्वेष और क्रोध, धन-संचय आदि कार्योंसे उनका वैराग्य-धर्म नष्ट नहीं होता। 'वर्णत्याग'—यह बात केवल मौखिक रूपमें ही व्यवहार करते हैं-आचरणमें नहीं पाया जाता। उनमेंसे अनेकों ब्राह्मण वर्णकी पूजा करते हैं तथा 'मैं ब्राह्मण संन्यासी हूँ' अथवा 'मैं संन्यासी होने पर भी ब्राह्मण हूँ'—ऐसा कहते हैं और वर्णका अभिमान नहीं त्याग कर पाते।

हमारे श्रीमद्गौड़ीय-सम्प्रदायमें भी उसी प्रकार वैराग्यका सम्मान है। प्रभु-संतान गोस्वामी आचार्य-गण गृहस्थ हैं, इसीलिये वैरागीगण बात-बातमें गोस्वामी-प्रभुओंको 'गृहस्थ' बतलाकर किंचित परिमाणमें निम्नाधिकारी समझते हैं; इसे गोस्वामी महाशयगण किसी प्रकार कठिनतासे सहन कर पाते हैं। इससे ऐसा लगता है कि 'वैष्णव' कहनेसे वैरागी का बोध होगा और 'आचार्य' कहनेसे गृहस्थ प्रभु-संतान, सम्प्रदायी वैष्णव-ब्राह्मण समझा जायगा। जैसा भी हो, श्रीकृष्णचैतन्य-सम्प्रदायमें आजकल गृहस्थ वैष्णवकी अपेक्षा वैरागीका सम्मान अधिक है। वैरागीगण कौपीन धारण कर वैष्णव-सम्मानसे मठ या आखाड़ामें वास करते हैं। कतिपय निष्किंचन वैरागी बेघरका होकर किसी तीर्थमें या गाँव-गाँवमें अभ्यागतके रूपमें विचरण करते हैं। श्रीमद्गोपाल भट्ट गोस्वामी द्वारा रचित 'संस्कार-दीपिका' नामक ग्रन्थमें बेघरबार वाले (अनिकेत) शुद्ध वैरागीके लक्षणमें अर्थात् कौपीन धारणका अधिकारी विचार-प्रसंगमें ऐसा लिखा है—

विजितषड्गुणो यस्तु दंभहिंसादिवर्जितः।
मैत्र-कारुण्यशीलश्च विगतेच्छो जितेन्द्रियः॥
गृहीतविष्णुदीक्षाको विष्णुभक्त्यादिसाधकः।
तस्मै देयं प्रयत्नेन याचिते सति साधुभिः॥
दंभाय भक्तिहीनाय शठाय परहिंसके।
न दातव्यं न दातव्यं दत्ते तु धर्मनाशनम्॥

जो भेक (वेश) दिया करते हैं वे सबसे पहले यह देखेंगे कि कौपीन चाहनेवाला व्यक्ति अपने सम्प्रदायकी विधि अनुसार श्रीभगवन्मन्त्रके प्रति लोभ कर यथाविधि भक्तिका साधन तो किया है! उस साधनके फल-स्वरूप वह अपने षड्रिपुओंको जीतकर दंभ और हिंसा आदि का वर्जन किया है—मैत्रकारुण्य-स्वभाव निष्काम और जितेन्द्रिय हुआ है। दांभिक, शुद्धभक्ति-हीन शठ और कपट व्यक्ति को वैराग्य चिन्ह नहीं प्रदान करेंगे। वैसा करनेसे दाता और ग्रहीता दोनों का धर्म नष्ट हो जायगा। इस प्रकार अधिकारका विचार न करके वैराग्यका चिन्ह धारण करनेसे वैराग्य नहीं होता, उससे तो केवल शठता और अहंकारकी ही वृद्धि होती है। अतएव वह व्यक्ति वैराग्यका अधिकारगत सम्मान और सेवा पानेके योग्य नहीं होता। हम बारंबार कहते हैं कि अयोग्य व्यक्तिको वैराग्यका चिन्ह नहीं दिया जाना चाहिये। पक्षान्तरमें ग्रहीता भी यह देखेंगे कि वैराग्यदाता गुरुने भी उसी प्रकारकी योग्यता लाभकर उपयुक्त पात्रके निकट वैराग्य ग्रहण किया है या नहीं। यदि वैराग्यवेश देनेवाले गुरुने बिना योग्यता प्राप्त किये ही किसी अपात्रसे वैराग्य-वेश लिया हो तो, ऐसा जान लेने पर वैसे गुरुसे वैराग्य नहीं लेना चाहिये। अन्यथा कल्याण नहीं होता।

इस विषयमें श्रीसनातन गोस्वामी, दास गोस्वामी आदिके जीवन-चरित्रसे शिक्षा लेकर कार्य करना आवश्यक है। श्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामीके चरित्र की भी विवेचना करनी चाहिए।

वैराग्यके सम्बन्धमें हमने जितने भी शास्त्र देखें या सुने हैं अथवा महापुरुषोंकी कृपासे जो कुछ जान या समझ सके हैं, उन सबका विचारकर हम अपने उपकारके लिये कुछ-कुछ लिखकर रखेंगे। दूसरोंको शिक्षा देनेका अधिकार या प्रवृत्ति हममें नहीं है।

यदि यह लेख कभी किसी के हाथों में पड़े और इसे पढ़कर उनके हृदय को इसकी किसी बात से ठेस लगे तो, वे हमें इसके लिए क्षमा करेंगे । मूढ़, दीन व्यक्ति की बातों पर सज्जन लोग क्रोध नहीं करते।

वैराग्य क्या है ? विराग धर्म को ही शास्त्रों में वैराग्य कहा गया है । माया द्वारा बँधे हुए जीवों की सांसारिक विषयों में जो आसक्ति होती है, उसी को 'राग' कहते हैं । उस आसक्ति से रहित अवस्था को ही 'विराग' कहते हैं । मायामुक्त जीव—सहज ही कृष्ण के प्रति राग प्राप्त पुरुष हैं । कृष्ण के प्रति राग उदित होकर जितना ही वह प्रबल होता जाता है, उतने ही परिमाण में विषयाशक्ति भी नष्ट होती जाती है । सम्बन्ध ज्ञान उदित होने पर वैराग्य सहज ही उदित हो पड़ता है । वैराग्य कभी भी अभ्यास के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता । श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के ५९ वें श्लोक में देखिये—

विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्ज्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥

तात्पर्य यह है कि मायामोहित जीवोंका कृष्णराग लुप्त होकर उसके स्थान पर विषय राग हुआ है । वह विषयराग केवल विषयोंका त्याग करने मात्रसे ही दूर नहीं होता; क्योंकि मन-ही-मन विषयतृष्णा प्रबल रहती है और पुनः पतन अवश्यम्भावी होता है । परन्तु जिस समय अप्राकृत कृष्णरसका आस्वादन मिल जाता है, उस समय वह सहज ही विषय-रस तृष्णाको हेय जान लेता है । ऐसी उपलब्धि होने पर ही स्वाभाविक रूपमें विषय-वैराग्य स्थिर होता है ।

वैराग्य भक्तिका हेतु, अङ्ग या चरम फल नहीं है । वैराग्य ज्ञानका भ्राता है । पद्मपुराण में (उत्तर खण्ड ६३ अ०) भक्तिदेवीने स्वयं इनके पारस्परिक सम्बन्धको रूपकके रूपमें बतलाया है—

अहं भक्तिरिति ख्याता इम मे तनयौ मतौ ।
ज्ञान-वैराग्य-नामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥

पुनः देवर्षि नारद कहते हैं—

अंगीकृतं त्वया यद्वै प्रसन्नोऽभूद हरिस्तदा ।
मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञान-वैराग्यकाविमौ ॥

इस प्रमाण द्वारा यह स्पष्ट है कि भक्ति ही मूल तत्त्व है । मुक्ति तो भक्तिकी परिचारिका मात्र है । ज्ञान-वैराग्य—ये दोनों भक्तिकी संतान हैं । श्रीमद्भागवत में भी (१ । २ । ७) ऐसा ही सिद्धान्त-वचन पाया जाता है—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानञ्च यदहैतुकम् ॥

जो लोग भगवान के प्रति शुद्ध भक्तियोग करते हैं, उनके हृदय में वैराग्य पैदा होता है, साथ ही अहैतुक ज्ञान का भी उदय होता है । फल की कामना से रहित आत्माके स्वतःसिद्ध बोध को ही ज्ञान कहते हैं । इसी ज्ञान को श्रीमहाप्रभुजी ने सम्बन्ध-ज्ञान कहा है । कृष्ण, जीव और इतर जगत्—इनमें जो यथार्थ सम्बन्ध है, उसे जान लेने पर ही सम्बन्ध-ज्ञान होता है । कृष्ण ही एकमात्र सेव्य वस्तु हैं, जीव उनका नित्य-सेवक है तथा इतर जगत अर्थात् प्राकृत जगत्—बद्ध जीवों की कृष्ण के साथ लीला की भूमि है । इस जगत में चिद्—अणु—स्वरूप जीव कृष्ण से विमुख होने के कारण कैदी के रूप में दण्ड भोगने के लिये बद्ध है अर्थात् माया द्वारा बँधे पड़े हैं । परम कारुणिक कृष्ण कृपा करके जीवों के साथ-साथ उनको उद्धार करने के लिये अपनी अनन्त लीलाएँ प्रकाश कर रहे हैं । इन विषयोंका विशुद्ध ज्ञान ही सम्बन्ध—ज्ञान कहलाता है । साधुसंगमें जीवोंकी जिस भक्तिका उदय होता है, उसके द्वारा यह सम्बन्ध ज्ञान भी जीव के चित्त पर भक्ति के बल से उदित हुआ करता है । भक्तिकी क्रियासे जीवकी इस प्राकृत जगत् के प्रति जो हेयबुद्धि या घृणा स्वाभाविक रूप से पैदा होती है—उसी को 'वैराग्य' कहते हैं । भक्ति से स्वाभाविक रूप में प्राप्त ज्ञान में मोक्ष की कामना नहीं होती । यदि ज्ञान में मोक्ष की वासना रहे तो ऐसे ज्ञान को भक्ति का विरोधी समझना चाहिए । इसी का नाम शुद्ध अद्वयज्ञान है ।

भक्ति ही—शुद्धज्ञान और वैराग्यकी एकमात्र जननी है। अतएव श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

अविच्युतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि च शं तनोति।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानञ्च विज्ञान-विरागयुक्तम्॥

जिस समय आत्मा शुद्धभक्तियोगके द्वारा परमात्माको अपनी सत्तामें देख पाता है, उस समय शुद्ध भक्तिकी क्रियामें ज्ञान और वैराग्यका साहचर्य परिलक्षित होता है। जैसे श्रीमद्भागवत में कहते हैं—

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया॥ (क)
(श्रीमद्भा० १।२।१२)

उसकी प्रक्रिया श्रीमद्भागवत में (१।२।१२-२१) में बतलायी गई है—

यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रंथि निबन्धनम्।
छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात् कथारतिम्॥
श्रृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत् सताम्॥
नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया।
भगवत्युत्तमःश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी॥
तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये।
चेत, एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति॥
एवं प्रसन्न मनसो भगवद्भक्तियोगतः।
भगवत्तत्त्व विज्ञानं मुक्तसंगस्य जायते॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षियन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे॥ (ख)

भगवद्विषयिनी द्रव्यमयी रति ही आत्माका सहज धर्म है। विषय-राग द्वारा मोहित जीवमें वह रति अप्रकाशित होती है। साधुसंग होने पर सब आत्माओंके आत्मा सर्वशक्तिमान्, मायाके अधीश्वर, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्द-विग्रह स्वरूप श्रीकृष्ण के प्रति जब वह रति कियत्-परिमाणमें श्रद्धाके रूपमें उदित होती है, तब साधु-चरित्रके अनुसरण द्वारा अपना चरित्र पवित्र करने की इच्छा होती है। इसका भी क्रम श्रीगीतामें बतलाया है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

अर्जुन! नाना प्रकार के यंत्रणाओं से भरे इस भवसागरमें पतित करोड़ों-करोड़ों जीवोंमें से कोई विरले ही सत्सङ्ग रूप सुकृतके बलसे मेरा भजन करते हैं। सर्व प्रथम उनमें से कोई-कोई आर्त्त होकर, कोई जिज्ञासु होकर, कोई अर्थार्थी होकर और कोई ज्ञानी होकर साधु-संगतका सेवन कर मेरा तत्त्व जानकर उस आर्त्ति, जिज्ञासा, अर्थकामना और ज्ञानरूप संसार-कामनाका परित्याग कर शुद्ध भजन करते हैं। गजेन्द्र, शौनक, ध्रुव और शुकदेव आदि

(क) श्रद्धालु मुनिजन भागवत श्रवणसे प्राप्त ज्ञान-वैराग्य युक्त भक्तिसे अपने हृदयमें उस परम तत्त्वरूप परमात्माका अनुभव करते हैं।

(ख) कर्मोंकी गाँठ बड़ी कड़ी है। विचारवान् पुरुष भगवानके चिन्तनकी तलवार से उस गाँठको काट डालते हैं। तब भला, ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो भगवान् की लीला कथामें प्रेम न करे।

भगवान श्रीकृष्ण के यशका श्रवण और कीर्तन दोनों पवित्र करने वाले हैं। वे अपनी कथा सुनने वालोंके हृदयमें आकर स्थित हो जाते हैं और उनकी अशुभ वासनाओं को नष्टकर देते हैं, क्योंकि वे सन्तों के नित्य सुहृद हैं।

जब श्रीमद्भागवत अथवा भगवद्भक्तों के सेवन से अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब पवित्र कीर्ति भगवान् के प्रति स्थायी भक्ति (नैष्ठिकी भक्ति) प्राप्ति होती है, तब रजोगुण और तमोगुण के भाव—काम और लोभ आदि शान्त हो जाते हैं और चित्त इनसे रहित होकर सत्त्वगुण में स्थित और निर्युक्त हो जाता है। इस प्रकार भगवान् की नैष्ठिकी भक्ति से जब संसार की समस्त आसक्तियाँ मिट जाती हैं, हृदय आनन्द से भर जाता है, तब भगवानके तत्त्व का अनुभव अपने आप हो जाता है। हृदय में सर्वात्म स्वरूप भगवान का साक्षात्कार होते ही हृदय की ग्रंथि टूट जाती है, सारे संदेह मिट जाते हैं और कर्म-बन्धन क्षीण हो जाता है।

महात्मा इसके जाज्वल्यमान् उदाहरण हैं। संसार के क्लेशोंसे जर्जरित होकर ही ये आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी हो पड़ते हैं अर्थात् शत्रु-भय और शारीरिक पीड़ा आदिसे आर्त्त; सांसारिक दुःखों से कैसे उद्धार हुआ जा सकता है—इस अनुसंधान से जिज्ञासु; मेरा अभीष्ट कैसे पूर्ण होगा—ऐसी कामना से अर्थार्थी एवं संसार से किस प्रकार मुक्ति मिलेगी—इस भावना से, दर्शन आदि के अनुशीलन से—'मैं ब्रह्म हूँ' अथवा 'ईश्वर आदि कुछ नहीं है, हमारी मृत्यु से ही सब कुछ प्राप्त हो जायगा'—ऐसा सोचकर ज्ञानाभिमानी हो पड़ते हैं। ज्ञानियों में से जो मेरा तत्त्व और सम्बन्ध जानकर यथार्थ ज्ञानी होते हैं, वे ही उक्त चार प्रकार की श्रेणियों में मेरे सर्वाधिक प्रिय होते हैं। अतएव वे सभी साधुकी कृपासे भजन-पद्धति जानकर श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करते हैं। पुनः श्रीमद्भागवत में कहते हैं (११।२०।२७-२८)—

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ।
वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥
ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ।
जुषमाणश्च तान् कामान् दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥

अर्थात् जो साधक समस्त कर्मों से विरक्त हो गया हो, उनमें दुःख-बुद्धि रखता हो, मेरी लीला कथाके प्रति श्रद्धालु हो, और यह भी जानता हो कि सभी भोग और भोगवासनाएँ दुःख रूप हैं, किन्तु इतना सब जानकर भी जो उनके परित्याग में समर्थ न हो, उसे चाहिए कि उन भोगों को तो भोग ले, परन्तु उन्हें सच्चे हृदय से दुःखजनक समझे और मन-ही-मन उसकी निंदा करे तथा उसे अपना दुर्भाग्य ही समझे। साथ ही इस दुविधा की स्थिति से छुटकारा पानेके लिये श्रद्धा, दृढ़-निश्चय और प्रेमसे मेरा भजन करे।

इस प्रकार कृष्ण भजन का आरम्भ करने पर भी ऐसे भजन करने वाले विरले ही हैं। इसलिये श्रीरूप-शिक्षा में श्रीमन्महाप्रभुजी ने कहा है—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव ।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति लता बीज ॥

गुरु कृष्णकी कृपासे किसी भाग्यवान जीव की श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णनाम, कृष्ण-गुण और कृष्ण-कथाओं के प्रति श्रद्धा होने पर क्रमशः गुरूपदेश के द्वारा श्रीकृष्णकी लीलाकथाओंका श्रवण, कीर्तन, और स्मरण करता है। इसके द्वारा वह अपने कर्मों की गाँठका काटनेमें समर्थ होता है। यहाँ एक बात स्मरण रखनी होगी कि कपटता और भोग तथा मोक्षकी वासनाओंका सम्पूर्ण रूपसे त्याग किये बिना आत्म धर्मका विकास नहीं हो सकता। यदि इस बातको भूल गये तो सारा परिश्रम विफल हो जायगा। साधु सज्जनोंके चित्त रूपी नवनीतको चुरा लेने वाले कृष्ण अपनी लीला कथाओंकी किसीके द्वारा निष्कपट आलोचना की जाती हुई देखकर उस व्यक्ति के निष्कपट चित्तमें प्रवेश कर हृदयमें पहुंच जाते हैं तथा उसकी सारी मलीनताका ध्वंस कर देते हैं। नित्य-भगवत्सेवा द्वारा हृदयकी मलीनता नष्ट प्राय होनेपर कृष्णके प्रति नैष्ठिकी भक्ति का उदय होता है। समस्त प्रकारकी अभद्रताओं में अर्थात् मलीनतामें विषयासक्ति ही सर्वप्रधान है। कृष्णसे इतर विषयोंमें जो आसक्ति होती है, क्रमशः क्षय होती जाती है, यही भक्तिजनित वैराग्य है। वैराग्य पैदा करनेके लिये पृथक रूप में अभ्यास करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। भक्ति सम्बन्धी एकादशी व्रतका पालन करनेसे बुरे अभ्यास अपने-आप दूर हो जाते हैं और सदअभ्यास प्रबल हो पड़ते हैं। भक्ति जितनी ही अधिक बढ़ती है, स्वाभाविक रूप में वैराग्य भी उसी परिमाणमें अपने आप बढ़ता जाता है और सम्बन्ध-ज्ञान उसी परिमाण में दृढ़ होता जाता है। अतएव रजस्तमो भाव और काम-लोभ आदि छः रिपु अब साधकके चित्त को आकर्षण करनेमें समर्थ नहीं होते। जिस परिमाणमें रजस्तम-काम-लोभ आदिका आवरण चित्तके

ऊपर से हटता जाता है उसीके अनुरूपमें चित्त की सत्त्व में स्थिति होती जाती है और वह उतना ही अधिक प्रसन्नता को प्राप्त होता जाता है । इस प्रकार प्रसन्नचित्त होने पर ही भगवद्भक्ति योग के प्रभाव से भगवत्-तत्व विज्ञान रूप भावभक्ति प्रकाशित होती है । ऐसी अवस्था में ही जीव वैराग्य चिह्न आदि धारण करने का अधिकारी होता है। क्योंकि उस समय संसार रूपी गाँठ अपने आप खुल जाती है, समस्त प्रकार के संशय दूर हो जाते हैं, और कर्म-बन्धन शिथिल हो जाता है । क्योंकि उस समय समस्त आत्माओं के आत्म कृष्ण को आत्म-तत्व में आविर्भूत होते देखा जाता है ।

जब तक क्रम-विकाश नहीं अवलम्बित होता, तब तक कुछ नहीं हुआ है—ऐसा कहा जा सकता है । केवल मात्र भेक (वैराग्य वेश) ग्रहण करके ही 'हमारा आत्म-विकाश-क्रम उदित हो गया है'—ऐसा समझने से आत्म वंचनाके अतिरिक्त और कुछ भी लाभ नहीं होता । साधकावस्था में हमें प्रतिदिन सतर्कता के साथ विचार करना चाहिए । प्रतिदिन सतर्क रहनेके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवत में एक पद्धति बतलायी गयी है—

भक्ति परेशानुभवो विरक्ति-
रन्यत्रचैष त्रिक: एक: काल: ।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नत: स्यु-
स्तुष्टि: पुष्टि: क्षुदपायोऽनुघासम् ॥

हमें प्रतिदिन यह देखना चाहिए हमारी श्रवण-कीर्तन आदि भक्ति जिस परिमाण में क्रमश: बढ़ रही है, उसी परिमाण में हमारा वैराग्य और सम्बन्ध-ज्ञान समृद्ध हो रहा है या नहीं। यदि न हो, तो ऐसा समझना चाहिए कि हमारी भक्ति चेष्टामें अभी कपटता है । और उस कपटता को बड़े प्रयत्नसे दूर करना होगा । इसी का नाम क्रमोर्द्ध गमन है ।

(क्रमश:)

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर

❋ उपनिषद्-वाणी ❋

(श्वेताश्वरतर-उपनिषद्)

परब्रह्म के विषय में जानने के लिये उनकी चर्चा करने वाले कुछ जिज्ञासु पुरुष आपस में इस प्रकार कहने लगे—'हमने वेदों में पढ़ा है कि इस समस्त जगत् के कारण ब्रह्म हैं, सो वे ब्रह्म कौन हैं ? हम लोग किससे उत्पन्न हुए हैं ? हमारा मूल क्या है ? किसके प्रभाव से हम जीवित हैं ? हमारा आधार कौन है ? हमारी पूर्णतया स्थिति किस में है ? अर्थात् हम उत्पन्न होने से पहले भूतकाल में, उत्पन्न होने के बाद वर्तमानकाल में और प्रलय होने पर किस में स्थित रहते हैं ? हमारा परम आश्रय कौन है ? किसकी व्यवस्था के अनुसार हम लोग सुख-दुःख आदि भोग करते हैं ? और इस सम्पूर्ण जगत्का संचालक कौन है ? जब इस प्रकारके प्रश्न जीवके चित्तमें पैदा हों तो समझना चाहिए कि उस जीवके हृदयमें श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी है । उसी समय साधु-संगकी आवश्यकता होती है । इस उपनिषद्में सबसे पहले इसी बात का आभास मिलता है ।

उपरोक्त प्रश्नोंके उत्तर अनेक प्रकार के हैं । कोई-कोई कालको ही जगत् का कारण बतलाते हैं; क्योंकि जगतकी सृष्टि और प्रलयभी कालके अधीन है । कोई-कोई स्वभावको ही कारण बतलाते

हैं; क्योंकि जिस वस्तु में जो स्वाभाविक शक्ति होती है, उस वस्तु से उसीका प्रकाश देखा जाता है। जैसे बीज के अनुरूप ही वृक्ष होता है। अतएव वस्तुगत शक्तिरूप स्वभाव ही कारण है। कहीं तो कर्म को ही कारण बतलाया गया है; क्योंकि कर्म के अनुसार ही जीव भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। कहीं आकस्मिक घटना अर्थात् होनहार को ही कारण कहा गया है। कहीं पंचभूत को और कहीं जीवात्मा को जगत्का कारण बतलाया गया है। अतएव हम लोगोंको विचार करना चाहिए कि वास्तविक कारण क्या है ? विचार करनेपर ऐसा समझ में आता है कि वे अलग-अलग तो क्या, सब मिलकर भी जगतके कारण नहीं हो सकते; क्योंकि आत्मा के अतिरिक्त उपरोक्त कारण-समूह सबके सब जड़ हैं और जड़की तो कोई शक्ति है नहीं, जड़ पदार्थ चेतन की प्रेरणा या सहायता के बिना कुछ भी नहीं कर सकते। जीवात्मा भी स्वाधीन रूपमें कुछ भी करने में समर्थ नहीं है, क्योंकि वह सुख-दुःख के हेतुभूत प्रारब्धके अधीन है। अतः इसका कारण कुछ और ही मालूम पड़ता है।'

इस प्रकार आपसमें विचार करने पर जब वे किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके, तब उन्होंने ध्योनयोगमें स्थित होने पर मन और इन्द्रियोंको बाहरके विषयोंसे हटाने पर अचिन्त्यशक्ति द्वारा अपने स्वरूपको छिपाकर अवस्थित परमात्माका दर्शन किया। तब वे इस निर्णय पर पहुँचे कि वे परमात्मा त्रिगुणातीत हैं। वे ही पूर्व-कथित काल से लेकर आत्मा तक-सभी कारणोंके अधिष्ठाता हैं और वे ही इस कार्य-कारणात्मक जगतके वास्तविक कारण हैं। अनन्तर उन लोगोंने इस प्रकार देखा था—यह जगत् एक चक्र की भाँति है। उसमें एक नेमि है। नेमि उस गोल घेरेको कहते हैं, जो चक्र के चारों ओर नाभि आदि सब अवयवों को घेरे हुए रहती है तथा यथास्थान बनाये रखती है। अर उन काठकी बनी पतली लकड़ियों को कहते हैं जो नाभि से चक्रको संयुक्त रखती हैं। जिस प्रकार चक्रकी रक्षाके लिये नेमीके ऊपर लोहे का घेरा (हाल) रहता है, उसी प्रकार संसार-चक्रके ऊपर सत्त्व, रजः और तमः—ये तीन गुण ही घेरे हैं। इस प्रकृति रूपी नेमिके मन, बुद्धि, अहंकार, तथा आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये आठ सूक्ष्मतत्त्व और इनके आठ स्थूल रूप—ये सोलह सिरे हैं; पचास अर (सांख्य शास्त्र में वर्णित अन्तःकरण के पचास भेद) हैं और पाँच महाभूतोंके कार्य—दस इन्द्रियाँ, पाँच विषय, और पाँच प्राण—ये बीस सहायक अरोंकी जगह हैं। जीवों को इस चक्रमें बाँधकर रखने वाली कामना रूप एक फाँसी है। देवयान, पितृयान और इस लोक में एक योनिसे दूसरी योनिमें जानेका मार्ग—इस प्रकार ये तीन मार्ग हैं। पाप कर्म और पुण्य कर्म—ये दो इस जीवको इस चक्रके साथ-साथ घुमानेमें निमित्त हैं और जिसमें अरे टँगे रहते हैं, उस नाभि के स्थान में मोह है। यह मोह ही जगतका केन्द्र है, जिस प्रकार नाभि चक्रका केन्द्र है।

पुनः इस संसारको नदी मानकर कहते हैं—जगत एक नदी है। इसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ही पाँच स्रोत हैं। संसारका ज्ञान हमें पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होनेके कारण इन्हें स्रोत कहा गया है। ये इन्द्रियाँ पंच सूक्ष्म भूतों (तन्मात्रों) से उत्पन्न हुई हैं, अतः इस नदीके पाँच उद्गम स्थान माने गये हैं। पंच प्राण इन जगतरूपी नदीकी पाँच तरंग मालाएँ हैं। मन से उत्पन्न पंच-विषय-ज्ञान इसका मूल है। इस नदी में शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध—ये पाँच विषय ही भँवर हैं जिसमें फँसकर जीव जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ जाता है। गर्भका दुःख, जन्मका दुःख, बुढ़ापे का दुःख, रोग का दुःख और मृत्यु का दुःख—ये पाँच प्रकारके दुःख ही इस नदीके प्रवाह में वेग रूप हैं। इन्हीं के थपेड़ोंसे जीव व्याकुल रहता है। अविद्या, अहंकार, राग, द्वेष, और मृत्युमय—ये पंच क्लेशही इस संसार रूपी नदीके पाँच पर्व (विभाग) हैं।

इस जगतरूप ब्रह्मचक्रमें—परमात्मा द्वारा

सञ्चालित संसार चक्र में जीव अपने-अपने कर्मके अनुसार भ्रमण कर रहा है। जीवको जब तक जगत् के सञ्चालक परब्रह्म का ज्ञान नहीं होता, तब तक वह संसार चक्रमें भ्रमण करता रहता है। जब वह जान लेता है कि उससे पृथक परमात्माकी प्रेरणासे ही वह संसार चक्रमें भ्रमण कर रहा है, तब वह उनके शरणागत हो पड़ता है और तब उनकी कृपा से संसार चक्रसे छुटकारा पा लेता है। वेदमें उन परब्रह्मकी महिमाका इस प्रकार गान किया गया है—वे सब के परम आश्रय हैं। वे ही सब के प्रेरक हैं। वे परम अक्षर (जिनका कभी विनाश नहीं होता है) और परम देवता हैं। वही परमब्रह्म सबके अन्दर अन्तर्यामी के रूप में विराजमान हैं। उनको इस प्रकार जानकर ब्रह्मवादी ऋषि लोग सर्वतोभाव से उनकी शरणमें जाकर जन्म-मृत्युसे सदाके लिये मुक्त हो गये। हम भी उनके मार्ग का अनुसरण करके उन्हीं की भाँति जन्म-मरण से मुक्त हो सकते हैं।

क्षर और अक्षर अर्थात् विनाशशील जड़ पदार्थ और अविनाशी जीवात्मा समुदाय—इन दोनों का परम पुरुष परब्रह्म ही धारण-पोषण करते हैं। जीव उनको भूल कर जब स्वयं इस विश्वका स्वामी बनने का अभिमान करने लगता है तभी माया के जाल में फँसकर जगत्-चक्र में भ्रमण करने लगता है। यदि सौभाग्यसे उन करुणामयकी करुणासे उसे सत्सङ्ग मिल जाता है, तब वह उनको (परमेश्वर को) जानकर सब प्रकारके बन्धनों से सदाके लिये मुक्त होजाता है।

ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, जीव अल्पज्ञ और अल्पशक्तिवाला है। ये दोनों ही अजन्मा हैं। इनके सिवा एक तीसरी शक्ति भी अजन्मा है, जिसे प्रकृति कहते हैं, यह जीवात्माके लिये उपयुक्त भोग सामग्री प्रस्तुत करती है। यद्यपि ये तीनों ही अजन्मा हैं, फिर भी ईश्वर शेष दोनों तत्त्वोंसे विलक्षण हैं। वे अनन्त हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हीं का विराट रूप है। वे विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार आदि सब कार्योंको करते हुए भी वास्तवमें कुछ नहीं करते, क्योंकि वे कर्त्तापनके अभिमान से रहित हैं। प्रकृति ही उनकी प्रेरणासे सब कुछ करती है। इन तीन तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप जान लेने पर ही सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हुआ जा सकता है। प्रकृति परिवर्तन होने वाली तथा विनाशशील है। इसका भोक्ता जीव अक्षर अर्थात् अविनाशी है। इन क्षर और अक्षर दोनों तत्त्वों पर एक परमेश्वर ही शासन करते हैं। उन परमेश्वर को जान लेने पर ही मायासे छुटकारा प्राप्त होता है, समस्त प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हुआ जा सकता है अविद्या, अहंकार आदि पंच-क्लेशों का विनाश किया जा सकता है तथा सदाके लिये जन्म-मृत्युके चक्करसे छुटकारा मिल सकता है। तब जीव इस शरीर का विनाश होने पर तीसरे लोक (इस लोक और परलोकके अतिरिक्त ब्रह्मलोक) के ऐश्वर्यों को भी तुच्छ जान कर—उनको त्याग करके पूर्णकाम हो जाता है। वे परम तत्त्व ही जानने योग्य हैं, उनसे बढ़कर और कुछ भी जानने योग्य नहीं है अर्थात् उनके सिवा और कुछ भी जानने की आवश्यकता नहीं है। भोक्ता (जीव), भोग्य (जड़-पदार्थ) और ईश्वर (नियन्ता)—इन तीन तत्त्वोंको जान लेनेपर और कुछ भी जानना शेष नहीं रहता। ये तीनों तत्त्व आपसमें अचिन्त्य-भेदाभेद-सम्बन्ध विशिष्ट हैं। जैसे अग्नि अपने प्रकट स्थान काठ में स्थित रहने पर भी उसको देखा नहीं जाता, मन्थन द्वारा प्रकाशित होती है, उसी प्रकार परमात्मा सब देहों में अवस्थित होनेपर भी किसी से देखे नहीं जाते; परन्तु प्रणव का निरन्तर जप करने से वे प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ते हैं।

अग्निको प्रकट करनेके लिये जैसे दो अरणियों (लकड़ियों) की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अपने शरीरमें परब्रह्म परमेश्वरको प्राप्त करनेके लिए शरीरको तो नीचे की अरणि और ऊँकारको (भगवन्नाम को) ऊपर की अरणि बनाना चाहिए।

इस प्रकार भगवन्नामसे वाणी और मनका संयुक्त करने (कीर्तन और स्मरण आदि द्वारा) से हृदय में छिपे हुए परमात्मा का साक्षात्कार होता है। जैसे तिलोंमें तेल, दहीमें घी, फल्गुनदी (ऊपर से सूखी हुई नदी) के भीतरी सोतों में जल तथा अरणियों में आग छिपी रहती है, उसी प्रकार परमात्मा भी हमारे हृदय रूपी गुफामें छिपे हैं। जिस प्रकार उपयुक्त साधनोंसे तिलोंसे तेल आदि उपलब्ध किये जा सकते हैं, उसी प्रकार साधक विषयों से विरक्त होकर सदाचार, सत्भाषण और संयम द्वारा साधन करते करते परमात्मा का साक्षात्कार करनेमें समर्थ होते हैं।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज।

श्रीगौरांग अवतारी-स्वरूप

"राधा भावद्युति सुललितं नौमि कृष्ण स्वरूपम्"

श्रीराधाजी का भाव और कान्तिधारी कृष्ण स्वरूप श्रीगौरांग महाप्रभुजीको नमस्कार करते हैं। राम-रसिक श्रीकृष्णचन्द्रजी ही शचीसुत श्रीगौरांग रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। अवतारी श्रीकृष्ण पूर्णस्वरूप द्वारिकापुरी में है, पूर्णतर स्वरूप मथुरापुरी में है तथा पूर्णतम स्वरूप श्रीगोकुलमें है। भगवानके सर्व स्वरूप ही नित्य सच्चिदानन्द आनन्दघन हैं, तथापि नन्द नन्दन स्वरूप ही परम प्रिय स्वरूप है।

श्रीकृष्णजी नन्दनन्दन स्वरूपमें ही गोपवेश वंशीधारी हैं। यह नन्दनन्दन स्वरूप परम दुर्लभ स्वरूप है जो मदन को भी मोहित करनेवाला है। केवल मदन ही मोहित नहीं होते, अपितु महापतिव्रता वृन्दादेवी और श्रीनारायणकान्ता लक्ष्मीदेवी भी मोहित होती हैं—

"यद्वाञ्छया श्रीआचरेत् तपः" (भागवत)

व्रजेन्द्रनन्दन का स्वरूप सर्वोत्तम स्वरूप है। उस स्वरूपके दर्शनसे औरों की तो बात ही क्या। और स्वयं भी मोहित होगये थे—

अपरि कलितपूर्वः कश्चमत्कारकारी।
स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्यपूरः।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्यं लब्ध्वा चेतः।
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव॥

(श्री ललितमाधव नाटक)

एकदिन श्री द्वारिकापुरीमें भगवान श्रीकृष्णजीने नव वृन्दावनकी रचना की और उसके अन्दर उन्होंने स्वयं विलास किया तथा पुरीके अन्दरकी मणिमय दीवाल में अपना प्रतिबिम्ब देखकर बोले—अहो, यह अपूर्व अनिर्वचनीय सर्वोत्तम रूपशाली पुरुष कौन है? इसके दर्शन से तो मैं स्वयं भी मोहित हो रहा हूँ और श्रीराधिकाजी के समान इस स्वरूप का बलपूर्वक आलिंगन करनेकी मुझे इच्छा हो रही है।

श्रीकृष्णजी का माधुर्य परमद्भुत अनन्त और असीम है, जिसका श्रीराधिकाजी ही अकेली पान करती हैं। एक तरफ श्रीराधिकाजीका शुद्ध प्रेम स्वच्छ दर्पणके समान है, जो क्षण-क्षणमें बढ़ता रहता है। दूसरी तरफ श्रीकृष्णजीका माधुर्य भी असीम, नित्य, तथा पूर्ण है। तब भी श्रीराधिकाजी के प्रेम दर्पणके सामने वह नव-नव रूपसे प्रकाश पाते हुए दीखता है। दोनों परस्पर समस्पर्धी हैं तथा अपराजित हैं। श्रीकृष्णजी कहते हैं कि उसी प्रेम माधुरीका आस्वादन करनेका लोभ मुझे होता है तथा श्रीराधिकाजीका स्वरूप अंगीकार करने के

लिए मेरा मन दौड़ता है। ऐसी भावना करके रसिक-शेखर श्रीकृष्णजी श्रीराधिकाजी का भाव और कान्ति लेकर श्रीगौरांग रूप में अवतीर्ण हुए।

सेई राधा भाव लैया चैतन्य अवतार।
युगधर्म नाम प्रेम कैल परचार॥
(चै० च० आ० खण्ड चतुर्थ परि०)

सर्वशक्तिमान श्रीव्रजेन्द्रनन्दनकी चित् शक्ति तीन प्रकार की है—ह्लादिनी, सन्धिनी और सम्वित्। ह्लादिनी शक्ति ही श्रीराधिकाजी है। श्रीराधा और कृष्ण अभेदात्म स्वरूप हैं, रसास्वादनके लिए ही दो मूर्तियों में प्रगटित हैं।

राधा कृष्ण एक आत्मा दुई देह धरि।
अन्योन्ये विलासे रस आस्वादन करि॥
(चै० च० चतुर्थ परिच्छेद)

सन्धिनी शक्ति—शुद्ध तत्त्वको कहते हैं। माता पिता, स्थान गृह शैय्या, आसन, प्रभृति शुद्ध सत्वके विकार हैं। सम्वित शक्ति—एक मात्र कृष्ण-विषयक ज्ञान है। ब्रह्म-ज्ञानादि उनके परिवार हैं। ह्लादिनी का सार ही प्रेम है। प्रेम का सार भाव है और भाव का सार महाभाव है। वही महाभाव स्वरूप ही श्रीराधा ठाकुरानीजी हैं—

महाभाव स्वरूपा श्रीराधाठाकुराणी।
सर्वगुण खनि कृष्ण कान्ता शिरोमणि॥
कृष्ण प्रेम भावित यार चित्तेन्द्रिय काय।
कृष्ण निजशक्ति राधा क्रीड़ार सहाय॥
(चै० च० आदि चतुर्थ परिच्छेद)

श्रीराधाजी कृष्ण की कान्ताओं में शिरोमणि स्वरूप अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हैं। उनका चित्त, उनकी सारी इन्द्रियाँ और शरीर—सब कुछ सदा-सर्वदा कृष्ण प्रेम में विभावित रहता है। ऐसी कृष्णकी क्रीड़ा संगिनी हैं। श्रीराधाजी ही त्रिविध कृष्ण-कान्ताओंके रूपमें प्रकाशित हैं। वैकुण्ठ में लक्ष्मी, द्वारिकापुरीमें महीषी और व्रजमें गोपीगण। श्री लक्ष्मीजी श्रीराधिकाजी की वैभव-विलास स्वरूपा हैं। महीषीगण श्रीराधिकाजी के प्रकाश स्वरूप हैं और व्रज देवियांकाय—व्यूह स्वरूपा हैं। श्रीराधिका जी ही अनेक कान्ताओं के रूप में श्रीकृष्ण की सेवा करती हैं।

श्रीराधिकाजीकी काय—व्यूह स्वरूपा सारी गोपियाँ सर्वात्मसमर्पण करके कृष्णकी सेवा करतीहैं:

लोकधर्म वेदधर्म देहधर्म कर्म।
लज्जा धैर्य देहसुखं आत्मसुख मर्म॥
दुस्त्यज्य आर्यपथ निज परिजन।
स्वजने करये यत ताड़न भर्त्सन॥
सर्व त्याग करि करे कृष्णेर भजन।
कृष्ण सुख हेतु करे प्रेम सेवन॥
इहा के कहिये कृष्ण दृढ़ अनुराग।
स्वच्छ धौत वस्त्रे जैसे नहिं कौन दाग॥
अतएव काम प्रेमे बहुत अन्तर।
काम अंध तमः प्रेम निर्मल भास्कर॥
अतएव गोपीगणेर नाहीं काम गन्ध।
कृष्ण सुख लागी मात्र कृष्णसे सम्बन्ध॥
(चै० च० चतुर्थ परिच्छेद)

गोपियोंने एकान्त भावसे कृष्ण सेवा करनेके लिए लोकधर्म. देहधर्म, लज्जा, धैर्य, देह-सुख, आत्म सुख आर्यपथ और परिजन सबका त्याग किया था। कृष्ण सेवाके लिए स्वजनोंकी भर्त्सनाभी सहनकी थी। इनका भाव दृढ़ अनुराग भाव कहा जाताहै। जैसे धोया हुआ सफेद स्वच्छ कपड़ा दागरहित होता है, उसी प्रकार गोपियों का शुद्ध अनुराग है। उनके अन्दर अपने सुखकी कामनाका लेश भी नहीं है। काम और प्रेममें बहुत अन्तर है। काम अन्धतम नरक है, और प्रेम प्रकाशमान निर्मल अर्थात् सूर्य वैकुण्ठ है। गोपियों का स्वरूप प्राकृतिक रमणियों जैसा नहीं है। गोपियाँ साक्षात् प्रेम रूपा मूर्तिमान भक्तिरूप व आनन्द रूपा हैं। गोपियोंकी पदरेणु पानेके लिए जगद्गुरु ब्रह्माजी व भक्तोत्तम श्रीउद्धवजीभी प्रार्थना करते हैं। वेद और श्रुतियाँ भी गोपियोंकी कृपा प्राप्त करनेके लिए प्रार्थना करती हैं।

जगद्गुरु ब्रह्माजी प्रार्थना करते हैं कि अनादि कालसे अब तक श्रुतियाँ भी जिनके चरण कमलोंकी

धूलिका अन्वेषण करती हैं, वे भगवान् मुकुन्द ही जिनके जीवन-सर्वस्व हैं—पुत्र, मित्र, सखा और पति हैं, ऐसे गोकुलवासी गोप-गोपियों की पदरज के द्वारा अभिषिक्त होने योग्य इस व्रजभूमि के किसी भी वनमें विशेषकर गोकुलमें वृक्ष, लता या गुल्म किसी भी योनि में जन्म हो जाय तो, मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात होगी—

तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद्गोकुलेऽपि कतमांघ्रिरजोऽभिषेकम्
यज्जीवितन्तु निखिलं भगवान मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत् पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥

(श्रीमद्भा० १०।१४।३४)

और श्री उद्धवजी भी कहते हैं-जिन्होंने दुस्त्यज्य पति, पुत्र, आत्मीय-स्वजनों और लोक-मार्ग परित्याग करके श्रुतिसमूह की अन्वेषणीय श्रीकृष्ण-पदवी—कृष्ण-प्रेम प्राप्त कर लिया है, उन्हीं गोपियों की चरण-रेणु प्राप्त करने के लिए मैं वृन्दावन में तरु, गुल्म, लतादि का जन्म लूँगा। ऐसा होने पर गोपिओं की चरण-धूलि में स्नान करके मैं धन्य हो जाऊंगा—

आसामहो चरण रेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम ॥

(भा० १०।४७।६१)

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण जी ने भी व्रजांगनाओं की प्रेम-सेवा से परितुष्ट होकर कहा है—

"न पारयेऽहं निरवद्य सयुजां"

(भा० १०।३२।२२)

अर्थात् तुमने पति, पुत्र, धर्म, स्वजनवर्ग और लोक-धर्मादि का परित्याग करके दुर्जय गृह-शृंखला तोड़ करके अनन्य भाव से मेरी प्रेम सेवा की है, उस प्रेम, सेवा और त्याग का बदला चुकाना चाहूँ भी तो मैं देवताओं सरीरका दीर्घायु प्राप्त कर भी नहीं चुका सकता। मैं जन्म-जन्म के लिए तुम्हारा ऋणी हूं।

समस्त गोपियों में श्रीराधिकाजी सर्वोत्तम हैं। भगवान उनकी प्रेम-सेवा को देखकर मुग्ध हैं। तथा उसी आश्रयजातीय सर्वश्रेष्ठ प्रेम-सेवा का आस्वादन करने के लिए वे स्वयम् गौरांग रूप में अवतीर्ण हुए हैं। श्रीचैतन्य-चरितामृतकारने गौरांग रूप में अविर्भूत होने के तीन कारण दिखाए हैं—

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा-
स्वाद्यो येनाद्भुत मधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।
सौख्यंचास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभा-
त्तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरिन्दुः ॥

(चै० च० आदि १।६)

१—श्रीराधिका जी की प्रणय-महिमा किस प्रकार की है?

२-मेरी अद्भुत मधुरिमा—जिसका श्रीराधिका-जी आस्वादन करती हैं वह किस प्रकार है? और

३—मेरी मधुरिमा की अनुभूति से श्रीराधिका-जी किस प्रकार का सुख अनुभव करती हैं। इन तीन विषयों में अत्यधिक लोभ होने से श्रीव्रजेन्द्र नन्दन श्रीकृष्णजी शचीगर्भ-सिंधु से गौरांगरूप में आविर्भूत हुए।

भगवान गौरसुन्दर ने अन्तलीला में सदा विप्रलंभ रसमयी श्रीवृषभानुनन्दिनी का भाव अंगीकार करके लीला की है।

श्रीमद्भागवतमें कृष्ण लीलाके पूर्वार्द्ध—सम्भोग-लीला का वर्णन है, परन्तु श्रीगौरांग अवतार में सर्वोत्तम विप्रलम्भ रसका ही अधिक रूपमें आस्वादन कर उत्तरार्द्ध को भी पूर्ण कर दिया है। रस भेद प्रकरण में विप्रलम्भ रस अट्ठारह प्रकार के बतलाए हैं। वे पुनः दस भागों में विभक्त हैं; जैसे:—चिंता, जागरण, उद्वेग, तनुक्षीणता मलीनता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु।

—(उज्वलनीलमणि)

इसका उदाहरण श्रीसूरदास जी ने सूरसागर में बहुत सुन्दर लिखा है—

अति मलीन वृषभानु कुमारी ।
हरि स्रम-जल भींजो उर-अंचल,
तिहिं लालच न धुवावति सारी ॥
अधमुख रहति अनत नहिं चितवति,
ज्यों गथ हारे थकित जुवारी ॥
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने,
ज्यों नलिनी हिमकर की मारी ॥
हरि सन्देश सुनि सहज मृतक भइ,
इक बिरहिनि दूजे अलि जारी ॥
सूरदास कैसें करि जीवैं,
ब्रजबनिता बिन स्याम दुखारी ॥

अर्थ—कोई गोपी उद्धवजीको देखकर कहरही है—श्रीवृषभानु राजकुमारी अति मलीन हो गई हैं। उनका शरीर हरि के विरह-ज्वरमें जर्जरित हो गयाहै, उनके नेत्र कमलोंके आंसुओंसे वक्षस्थल तथा वस्त्रांचल भीग गएहैं। उन हरि संबंधी आँसुओंको अपने वक्षःस्थल पर धारण करने के लोभसे अपने वस्त्रोंको धुलवाती तक नहीं है। जिस दिनसे श्रीकृष्ण मधुपुरी गए हैं, उसी दिन से राजकुमारी अधमुखी सी रहती हैं, वे कहीं दूसरी ओर देखती तक नहीं हैं; वे सदा उसी प्रकार उदास और थकित दीख पड़ती हैं, मानो कोई जुवारी जुए में अपनी सारी पूँजी गँवा चुका हो। जिस प्रकार रात्रिकाल में चन्द्रमा को देखकर कमल कुम्हिलाया रहता है; उसी प्रकार श्रीमती जी का मुखमण्डल सदा कुम्हिलाया रहता है तथा उनके केश अस्त-व्यस्त रूप में बिखरे पड़े रहते हैं। राजकुमारी जब श्रीकृष्ण जी का कहीं से कोई सन्देश सुनती हैं, तो उसी क्षण मृतक-तुल्य हो जाती हैं। कुमारी एक तो कृष्ण विरह में तड़पती हैं, दूसरे भ्रमर भी उनको सताता है। सूरदासजी कहते हैं कि श्याम के बिना दुखित ब्रज-बनिताएँ कैसे प्राण रखें ?

अन्यत्र मैथिल कवि श्रीविद्यापतिजी ने भी इसका बहुत ही सजीव वर्णन किया है—

कत दिन माधव रहब मथुरापुर ।

× × × ×

दिवस लिख-लिख नखर खैयायलूँ बिछुरत गोकुल नाम ॥
हरि हरि करि कहब ए सम्वाद ॥
सोउरि सोउरि लेह क्षीण भेल मुझ देह जीवन आछये—
पुनः— किवासा ॥
माधव, कत परबोधब राधा ।
हा हरि हा हरि कहतहि बेरि-बेरि अबजिउ करब समाधा॥
धरनि धरिये धनि जतनहि बइसह,पुनहिं उठए नहिं पारा॥
सहजहि बिरहिन जगमहँ तापिनि बौरि मदन-सर-धारा ॥
अरुन-नयन-लोर तीतल कलेवर बिलुलित दीघल केसा ।
मन्दिर बाहिर करइत संसय, सहचरि गनतहि सेसा ॥
कि कहब खेद भेद जनि अन्तर, धन धन उतपत स्वाँस ।
भनइ विद्यापति सेहो कलावत, जीव बँधल आस-पास ॥

अर्थात्—विरहिणी राधाजी पूँछती हैं कि माधव और कितने दिन मथुरा में रहेंगे। कब मेरे भाग्य में उनका दर्शन होगा। दिन भर नखों से जमीन पर उनका नाम लिख-लिख कर मेरे हाथों की अँगुलियाँ क्षय हो गई हैं। अहो! श्यामसुन्दर तो गोकुल का नाम भी भूल गए हैं। हरि, हरि, इस दुःख का संवाद किसको बताऊँ।

फिर कोई दूती मथुरा नगरी में आती है और वह श्रीकृष्ण जी के सामने कहती है—हे माधव! श्रीराधा जी को मैं और कितना प्रबोध दूँ। अहो! आपके विरह में अतिशय व्यथित होकर बारम्बार हा हरि ! हा हरि ! उच्चारण करती हुई प्राण त्याग करना चाहती हैं, और उसी प्रकार से दिन-रात काटती हैं। माधव ! और भी सुनिये:—

कुमारी इतनी दुर्बल हो गई हैं कि जमीन पर बड़ी यत्न से बैठती हैं और फिर उठ नहीं सकती हैं। एक तो संसार की सारी वस्तुएँ विरहिणियों के लिए हानिकर हैं, उस पर कामदेव का बाणसमूह उसे और भी पागल बना देता है। वृषभानुकुमारी के अरुण नेत्रयुगल द्वारा विगलित अश्रुधारा से उनका सारा शरीर भीग जाता है। उनके लम्बे-लम्बे केश अव्यवस्थित हो गए हैं। श्रीकृष्ण की याद में वे इतनी दुबली हो गई हैं कि

उनको मन्दिरसे बाहर लेजाते समय सखियोंको संशय होने लगता है कि कहीं उनकी मृत्यु न हो जाय । और अधिक दुखकी बात ही क्या कहूँ, वे बार-बार दीर्घ स्वांस ले-लेकर जो खेद करती हैं, उसे सुननेसे हृदय फट जाता है । विद्यापतिजी कहते हैं कि उस कलावती के प्राण केवल (तुम्हारी) आशाके बँधनमें ही बँधे हैं । वे केवल कृष्णकी प्रतिज्ञामें ही जी रही हैं, नहीं तो कबके उनके प्राण पखेरू हो गए होते ।

श्रीगौरांगमहाप्रभुजीकी आदि, मध्य और अन्त तीन लीलाएँ हैं । आदि लीलामें अध्ययन लीला प्रकाश किए हैं, मध्यलीलामें संन्यास ग्रहणकर सर्वत्र युग-धर्मका प्रवर्तन तथा हरिनाम संकीर्तनका प्रचार किये हैं, और अन्तलीलामें उन्होंने एकान्तमें जगन्नाथपुरीमें राधाभाव लेकर विप्रलम्भ भावमें स्वमाधुर्यका आस्वादन किया है ।

अन्तलीलामें सतत् विरहिनी श्रीराधाजीके भाव में विभावित श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीके भावोंका श्रीचैतन्यचरितामृतमें बड़ा ही सरस और सजीव वर्णन है—

कृष्ण मथुराय गेले गोपीरे जे दशा हैल ।
कृष्ण विच्छेदे प्रभुर से दशा उपजिल ॥
उद्धव दर्शने जैसे राधार विलाप ।
क्रमे क्रमे हैल प्रभुर उन्माद विलाप ॥
राधिकार भावे प्रभुर सदा अभिमान ।
सेई भावे आपना के हय राधा ज्ञान ॥

अर्थात्—जब श्रीवृजेन्द्रनन्दन मथुरापुरी चले आये, तब उनके विरहमें व्रजदेवियोंकी जो दशा हुई थी, वही दशा श्रीकृष्ण विरहमें तड़पते हुए श्रीगौरांगमहाप्रभुजीमें प्रकाशित हुई, और मथुरापुरी से श्रीकृष्णजीके भेजे हुए श्रीउद्धवजीके दर्शन से श्रीमतीराधाजीने जैसा विलाप किया था, श्रीमन्महाप्रभुजीने भी ठीक उसी प्रकार उन्मादपूर्ण विलाप किया और सर्वदा राधिकाजीके भावमें विभोर होकर अपने को राधिका समझा ।

श्रीगौरांगमहाप्रभु जब श्रीजगन्नाथजी का दर्शन करते थे, तब उन्हें ऐसा लगता था मानो वे (राधाभाव से) कुरुक्षेत्रमें श्रीनन्दनन्दन का दर्शन कर रहे हैं और उसी भावसे उनके पास प्रार्थना करते थे । जब गंभीरा को (अपने वास स्थान पर) लौटते, तब वे श्रीकृष्ण विरहमें विलाप करते थे ।

भूमीर उपर बसि निज नखे भूमि लिखे ।
अश्रु-गङ्गा नेत्रे बहे किछुई ना देखे ॥
पाइनु वृन्दावननाथ पुनः हाराइनु ।
के मोर निलेक कृष्ण ? काहाँ मुइ आइनु ? ॥
(चै० च० अन्त १४ । ३६-३७)

प्रभुके नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा धरातलमें गंगाकी धाराके समान प्रवाहित हो रही है । आँखों से इस प्रकार जोरोंसे अश्रु की धारा निकलती कि वे कुछ देख नहीं पाते । इसी प्रकार कभी-कभी भूमिपर बैठे नख से कृष्णनाम लिख रहे हैं और तो कभी करुण विलाप करते-करते कहते हैं,"अहा !" मुझे कुरुक्षेत्रमें श्रीवृन्दावननाथका दर्शन मिला है । पुनः थोड़ी देर बाद कहते, हाय, हाय, मेरे प्राणनाथको कौन हरण करके ले गया ? मैं प्राणनाथको छोड़कर कहाँ आगया ।" श्रीप्रभु जी इस प्रकारसे विलाप करते-करते भूमिपर मूर्छित होकर गिर गए । उसी समय श्रीस्वरूपदामोदरजी तथा रायरामानन्दजी उस स्थान पर आगये और वे श्रीमहाप्रभुजीका महाभाव देखकर हाहाकार कर उठे । महाप्रभुजी जमीन पर जड़से उखड़े हुए कदली वृक्षके समान पड़े हैं और उनके नेत्रोंसे ढरक-ढरककर आंसू गिर रहे हैं । आँखोंकी पुतलियाँ उलट गई हैं । स्वरूपदामोदरजी और रायरामानन्दजीने दुखसे हा प्रभुजी ! ऐसा कहते-कहते और रोते-रोते उनको उठाकर बैठाया और उनके कानों में श्रीकृष्णनाम बारम्बार जोर-जोरसे सुनाने लगे । कुछ समयके बाद श्रीगौरांगमहाप्रभुजीको कुछ चैतन्य हुआ; परन्तु फिर वे स्वरूपदामोदरजी और श्रीरामानन्दजीको गले लगाकर करुण स्वरसे विलापकर कहने लगे—

सुन बान्धव ! कृष्णेर माधुरी ।
जोर लोभे मोर मन छाड़िलेक वेदधर्म ॥
योगी हईया हइल भिखारी ।

प्रकारसे शङ्खका कुण्डल धारण करते हैं, उसी प्रकार मेरे मनने कृष्ण-लीला-मण्डल रूप शुद्ध शङ्ख-कुण्डल धारण किया है। (तात्पर्य यह कि उनका मन निरन्तर कृष्णकी लीलाकथाओंका श्रवण करता है; यही कुंडल धारण करना है।) साधारण योगियोंके शङ्खके कुण्डल साधारण शङ्खारी कारीगरों द्वारा बने होते हैं, परन्तु मेरे मन योगीने व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी जैसे कारीगर द्वारा प्रस्तुत किये गये कृष्णलीला-मंडल रूप भागवत-कुंडल धारण किया है। साधारण योगीके हाथमें तूम्बीका कमंडलु और कन्धे पर झोली होती है, परन्तु मेरे मन रूपीयोगीने कृष्ण-तृष्णा रूप तूम्बीकी थाली अपनाया है और 'कृष्ण को पाऊँगा'—इस आशारूपी झोली को कन्धे पर रखा है। 'कृष्ण कैसे मिलेंगे'—इस चिंतारूपी गुदड़ीको अपने शरीर पर डाल रखा है। योगी लोग शरीरमें कंडे या लकड़ीका भस्म लगाते हैं, लेकिन मेरे मनरूपी योगीका शरीर धूलीरूप विभूतिसे मलीन है। मेरा मन योगी सब प्रकारकी बातोंका उत्तर—'हा कृष्ण! हा कृष्ण!—केवल इस प्रकारके प्रलाप-वचनों से ही दिया करता है। इस प्रकार विलाप वचनों को बोलकर जब श्रीगौरांगमहाप्रभु चुप होगए तब श्रीस्वरूप गोस्वामीजी महाप्रभुके भावानुरूप श्रीकृष्णलीला सम्बन्धी एक मधुर पदका कीर्तन किया। तब कहीं जाकर महाप्रभुजीको कुछ चेतनता आई। इस प्रकार आधी रात बीत गई। फिर श्रीस्वरूपदामोदरजी और श्रीरामानन्दरायजी प्रभुजी को पकड़कर गंभीरा (वह छोटीसी कोठरी जहाँ महाप्रभुजी रहते थे) के अंदर ले आए और उन्हें शयन कराया। स्वरूप गोस्वामीजी गंभीराके द्वारपर सोये, जिससे महाप्रभुजी फिर कहीं बाहर न चले जाँय। परन्तु श्रीगौरांगमहाप्रभुजी तो श्रीकृष्ण विरहमें तड़प रहे थे, उनके नेत्रोंमें नींद कहाँ से आये। वे और भी अधिकाधिक उत्कण्ठित होकर मन्दिर के चारों द्वार बंद रहने पर भी जगन्नाथदेवके मंदिरके पूर्व द्वारपर जा पहुँचे और महाभाव अवस्था में अचेतन होकर गिर पड़े। थोड़ी देर बाद श्रीस्वरूपदामोदरजी शीघ्रतापूर्वक मंदिरके अन्दर गये और देखा कि मन्दिरके सब द्वार बन्द हैं। मन्दिरके भीतर कोना-कोना छान डाला, परन्तु महाप्रभुजी न मिले। तब भक्तलोग बहुत ही दुःखी होकर इधर उधर देखने लगे। अकस्मात् उनकी दृष्टि श्रीजगन्नाथ-जीके सिंह द्वारके उत्तरमें एक स्थानपर अचेतन अवस्थामें पड़े श्रीमहाप्रभु के ऊपर पड़ी। निकट पहुँच कर देखा कि उनके शरीर में न तो श्वांस चल रहा है और न चेतनता का कोई लक्षण ही शेष है—

प्रभु पड़ीयाछेन दीर्घ हात पाँच छय।
अचेतन देह नशाय स्वांस नाहीं बय॥
एक एक हस्त पद दीर्घ तिन हात।
अस्थि ग्रन्थि भिन्न चर्मे आछे मात्र तात॥
—(चै० च० अन्त १४ परिच्छेद)

श्रीमहाप्रभु जी जमीन पर पड़े हैं। उनका शरीर पांच छः हाथ लम्बा हो गया है। स्वाँस बंद है। हाथ-पैर तीन-तीन हाथ लम्बे होगये हैं। हाथ और पैरोंके जोड़ अलग अलग हो गये हैं। एक अंग दूसरे से एक-एक बालिस्तदूर हो गये हैं, सिर्फ चमड़ीसे ढके हुए जुड़े हैं। मुँहसे लार गिर रहीहै। भक्तमंडली श्री-महाप्रभु जीको ऐसी अवस्थामें देखकर दुःखी होगयी, फिर श्रीस्वरूपदामोदरजी तथा रायरामानन्दजी दुःख से श्रीमहाप्रभुजीके कानोंमें उच्चस्वरसे श्रीकृष्णनाम सुनाने लगे। ऐसा करने से कुछ समयके बाद प्रभु जी के शरीरमें चैतन्य आया और फिर भक्तमंडली में आनन्द छा गया।

इस महाभावकी अधिकारिणी एक मात्र वृष-भानुनन्दिनी श्रीमतीराधिका ही हैं। वे ही विप्रलम्भ रसमयी हैं। सर्वोत्तम उज्ज्वल रसका आस्वादन करने के लिए स्वयं व्रजराजकुमार ही अपनी प्रेयसी श्रीमतीजीका भाव और कान्ति लेकर श्रीगौरांग रूप में भूतल पर अवतीर्ण हुए हैं। कोई कहते हैं, वे श्री-राधाजी के अवतार हैं। ये सब बातें सत्य ही हैं, फिर भी वे और कोई नहीं, साक्षात् गोपी-प्राणधन श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं। गोपियोंके प्रेमके ऋणी होनेके कारण (ऋणको चुकानेके लिए) राधाभाव तथा

राधा कान्तिको लेकरभूतलमें श्रीगौरांग रूपमेंअवतरित हुए हैं। श्रीगौरांग महाप्रभुके अवतीर्ण होनेके दो कारण हैं। मुख्य कारण है, श्रीराधाजीके भावका आस्वादन करना और गौण कारण है युग-धर्म हरिनाम का प्रचार करना।

कलियुगे युग-धर्म नामेर प्रचार।
तथि लागि पीतवर्ण चैतन्यावतार॥
(चै० च० आदि ३ परिच्छेद)

प्रेम से बोलो श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीकी जय!

—श्रीहरि कृपादास ब्रह्मचारी, भक्तिशास्त्री

काम और प्रेम

काम और प्रेम में बहुत ही अन्तर है। जब तक काम और प्रेममें क्या अन्तर है—इसे वस्तुतः समझ न लिया जाय, तब तक प्रेम के क्षेत्र में प्रवेश करना कठिन ही नहीं, असंभव है। कुछ अज्ञानी व्यक्ति कामको ही प्रेम समझ कर प्रेमको दुहाई दिया करते हैं। परन्तु उनसे प्रेमकी परिभाषा पूछने पर सिद्धान्त विरुद्ध उत्तर दिया करते हैं। क्योंकि अपनी कामनाओं की पूर्तिमें ही रत रहते हैं, उन्हें यथार्थ प्रेमके सम्बन्धमें विचार करने को अवकाश ही नहीं मिलता। वे केवलमात्र लैला-मजनूँ आदिके जड़ीय काम तक ही सीमित हैं। काममें अपने सुखकी इच्छा सीमित होती है। परन्तु प्रेम में इसके विपरीत सर्वदा अपने प्रियतम कृष्ण-सुखकी ही एकमात्र अभिलाषा होती है। प्रेमका यह लक्षण एक-मात्र गोपियोंमें ही लक्षित होता है। इसलिये गोपी-प्रेम ही सर्वोच्च बतलाया गया है। गोपियाँ अपने प्रियतम कृष्णके सुखके लिए ही सब कुछ किया करती थीं। चैतन्य-चरितामृतमें काम और प्रेमके तत्त्व का इस प्रकार वर्णन है—

आत्मेन्द्रिय प्रीति वांछा तारे बोल 'काम'।
कृष्णेन्द्रिय प्रीतिइच्छा धरे प्रेम नाम॥
कामेर तात्पर्य—निज संभोग केवल।
कृष्ण सुख तात्पर्य मात्र प्रेमे त प्रबल॥

काम में ऐसी भावना होती है कि मैं ही फल भोक्ता हूं। परन्तु प्रेममेंप्रियतम कृष्णही एकमात्र भोक्ता होते हैं। प्रेमका सर्वोच्च आदर्श गोपियोंमें ही निहित है। वे सर्वदा कृष्णको ही सुखी देखना चाहती है। उन्हें अपने सुख-दुख की चिन्ता नहीं होती—

आत्म-सुख-दुखे गोपीर नाहिक विचार।
कृष्ण सुख हेतु करे सब व्यवहार॥
(चै० च०)

अतएव काम और प्रेममें बहुत ही अन्तर है। काम घोर अंधकार स्वरूप है और प्रेम निर्मल सूर्य है, जो अंधकार को दूर कर अपने प्रकाशसे जगतका उद्भासित करता है।

अतएव काम प्रेमे बहुत अन्तर।
काम-अन्धतमः प्रेम-निर्मल भास्कर॥

फिर गोपियों में जो उनके अपने शरीर के प्रति प्रीति दीख पड़ती है, जैसे अपने को सजाना इत्यादि वह भी कृष्ण प्रीति के लिये ही समझो।

ए देह-दर्शन-स्पर्शे कृष्ण-सन्तोषण।
एई लागि करे अंगेर मार्जन भूषण॥

इसीलिये तो उद्धव जैसे परमज्ञानी भक्तने भी गोपियों की पदरेणु को अपने सिर पर धारण करनेके लिये वृन्दावनमें लता-गुल्म आदि बनना चाहा है। और तो क्या स्वयं भगवान कृष्णभी गोपियोंके ऋण के चिरऋणी बन गये हैं। धन्य हैं गोपियाँ! और धन्य है उनका प्रेम!!

—ओ३म्प्रकाश ब्रह्मचारी "साहित्य-रत्न"

गायत्री-मन्त्र और नारी

(आचार्य पीठाधिपति स्वामी श्रीराघवाचार्य महाराज)

१—गायत्रीमन्त्र प्रसिद्ध है। ऋग्वेदकी शाकल-संहितामें (३।६२।१०) सामवेद की कौथुम संहितामें (उ. १३।४।३।१) शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता में (३।३५, १६।३, २२।९, ३०।२), काण्व संहिता में (३।४३, २४।१३, ३४।२) कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में (१।५।६।१२, १।५।८।१०, ४।१।११।७) तथा मैत्रायणी संहिता में (४।१०।७७) यह उपलब्ध होता है। गायत्री इसका छन्द है और सविता इसके देवता हैं।

२—उपनयन संस्कारमें इसके उपदेशका विधान है। जो उपनयन संस्कार के अधिकारी नहीं, है उनको गायत्री मन्त्र का उपदेश प्राप्त करनेका भी अधिकार नहीं होता। धर्मशास्त्रों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पुरुषोंके लिये उपनयन संस्कार का विधान किया है। नारी के लिये विधान नहीं है।

३—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों ही द्विजाति कहलाते हैं। इन तीनों में से ब्राह्मण का छन्द गायत्री है, क्षत्रिय का त्रिष्टुभ और वैश्य का जगती। अतः गायत्री ब्राह्मणाय अनुब्रूयात्, त्रिष्टुभ ७ राजन्यस्य जगतीं वैश्यस्य पारस्कर गृ० २।३।७-८-९ मानव गृह्य १।२।३ ऐतरेय ब्राह्मण १।५।२८ के अनुसार ब्राह्मणको गायत्री मन्त्र का, क्षत्रिय को त्रिष्टुप मन्त्र का तथा वैश्य को जगती मन्त्र को प्राप्त करने का अधिकार है। मेधातिथि ने "सावित्र्या ब्राह्मणमुपनयीत, त्रिष्टुभा-राजन्यम्। जगत्या वैश्यम्" इसी श्रुतिको उद्धृत कर यही निर्णय दिया है।

४—नृसिंह तापनीयोपनिषत् की श्रुति है—"सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं यदि जानीयात् स्त्रीशूद्रः समृतोऽधोगच्छति।" इससे स्पष्ट है। कि स्त्रीके लिये गायत्री मन्त्र का अधिकार नहीं है कारण स्पष्ट है नारी का छन्द गायत्री है। ऐसी स्थितिमें गायत्री मन्त्रके नारीके द्वारा प्रयोग उसके आध्यात्मिक जीवन के लिये हानिकारक है। श्रुति के 'समृतोऽधो गच्छति' अंश से प्रकट होता है। इस मन्त्रके उपयोग से नारी के शरीर के कोषाणु मृतावस्था को प्राप्त हो जाते हैं तथा नारीके जीवात्मा का अभ्युत्थान रुककर पतन का मार्ग खुल जाता है।

५—शरीर-विज्ञान के अनुसार नारीमें सोमतत्त्व की प्रधानता होती है। उसमें विद्यमान अग्नितत्त्व रज तक ही रुक जाता है। इस अग्नितत्त्व की वृद्धि स्त्री की नैसर्गिक स्थिति के प्रतिकूल होती है। अतः नारीके लिये अग्नि तत्त्व का प्रकाशक गायत्री मन्त्र अपेक्षित नहीं है।

६—नारी का स्वरूपगत देवता है सोम, सविता नहीं। गायत्री मन्त्र का देवता सविता है। देवता भेद होने से गायत्री मन्त्र का उपयोग नारीके लिए लाभ-दायक न होकर उलटे हानिकारक है।

७—स्वर-विज्ञान के अनुसार गायत्री मन्त्र के लिये अपेक्षित स्वर स्वभावतः नारीके स्वरमें उपलब्ध नहीं होते।

८—नारी के शारीरिक मानसिक एवं बौद्धिक विकाशके लिए सौरशक्तिका संवर्द्धन अपेक्षित नहीं होता, प्रत्युत् सोमशक्ति की आवश्यकता होती है। अतः नारी के लिये गायत्री-मन्त्र उपादेय नहीं है।

❀ जैवधर्म ❀

(पूर्व-प्रकाशित वर्ष ६, संख्या ७--८ पृष्ठ १६७ से आगे)

विजय—मोह किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—हृदयकी मूढ़ता ही 'मोह' है जो हर्ष, विश्लेष और विषाद से उत्पन्न होता है।

विजय—मृति (मृत्यु) किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—इस रसमें मृत्यु नहीं होती। मृत्युकी चेष्टामात्र होती है।

विजय—आलस्य कैसा होता है ?

गोस्वामी—इस रसमें आलस्य भी नहीं होता। शक्ति रहने पर भी अशक्त होने का छल करना ही 'आलस्य' कहलाता है। परन्तु कृष्ण सेवा में आलस्य का तनिक भी स्थान नहीं है। हाँ,गौण रूपमें प्रतिपक्ष में दिखलाई पड़ता है।

विजय—जाड्य कैसे उत्पन्न होता है ?

गोस्वामी—अपने इष्ट वस्तुके दर्शन से, उसके संबन्धमें श्रवण करनेसे, अनिष्टके दर्शनसे तथा विरहसे जाड्य होता है।

विजय—व्रीड़ा अर्थात् लज्जा क्यों होती है ?

गोस्वामी-नवीन संगम (मिलनादि), अकार्य, स्तव, अवज्ञा आदिसे 'व्रीड़ा' अर्थात् लज्जा होती है।

विजय—अवहित्था किससे उत्पन्न होती है ?

गोस्वामी—अवहित्था या आकार छिपाना, कपटता,लज्जा, दाक्षिण्य, भय और गौरवसे होताहै।

विजय-स्मृति किससे होती है ?

गोस्वामी—तुल्य वस्तुके दर्शन और दृढ़ अभ्यास से 'स्मृति' होती है।

विजय—वितर्क कैसे उत्पन्न होता है ?

गोस्वामी—विमर्श और संशयसे 'वितर्क' जन्मता है।

विजय—चिन्ता किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—इष्टकी अप्राप्ति और अनिष्ट की आशङ्कासे 'चिन्ता' होती है।

विजय—मति किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—विचारोदित अर्थ निर्द्धारण ही 'मति' है।

विजय-धृति किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-मनकी स्थिरता ही 'धृति' है, जो दुःख के अभाव और अभिलाषा की मूर्तिसे होती है।

विजय-हर्ष किसे कहते है ?

गोस्वामी—अभीष्ट दर्शन और अभीष्ट-प्राप्तिसे जो प्रसन्नता होती है, वही 'हर्ष' है।

विजय-औत्सुक्य किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—इष्ट दर्शन की लालसा और इष्ट प्राप्तिकी जो तीव्र उत्कंठा होती है, उसे औत्सुक्य' कहते हैं।

विजय—उग्रता किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-प्रचण्डता का नाम 'उग्रता' है। मधुर मधुर रस में उग्रता का स्थान नहीं है।

विजय-अमर्ष किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—निन्दा और अपमान के कारण जो असहिष्णुता होती है, उसे 'अमर्ष' कहते हैं।

विजय-असूया किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—दूसरोंके सौभाग्य के प्रति विद्वेष ही 'असूया' है। यह सौभाग्य और गुण से होता है।

विजय—चापल किससे उत्पन्न होता है ?

गोस्वामी—चित्तलाघव को 'चापल' कहते हैं। यह राग और द्वेषसे होता है।

विजय-निद्रा कैसे होती है ?

गोस्वामी-क्लेम अर्थात थकावटसे निद्रा होतीहै।

विजय-सुप्ति किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-स्वप्न ही 'सुप्ति' कहते हैं।

विजय—बोध किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-निद्रा दूर होने को 'बोध' कहते हैं।

बाबा विजय, इन व्यभिचारी भावों के अतिरिक्त उत्पत्ति, संधि, शाबल्य और शान्ति—ये चार दशाएँ हैं। भावसंभव ही 'भावोत्पत्ति' है। दो भावोंका एकत्र मिलना ही 'भावसन्धि' है। एक प्रकारके दो स्वरूपों को संधिका नाम 'स्वरूप-संधि' है। पृथक्-पृथक् स्वरूपोंकी संधिको भिन्न संधि कहते हैं। अनेक भावों के एकत्र मिलने पर 'भावशाबल्य' होता है। भावों की शान्ति अर्थात् उनका लय हो जाना ही 'भावशान्ति' कहलाती है।

विजय अब मधुररसके विभाव, सात्त्विकभाव और व्यभिचारी भाव—इन सबकी व्याख्या सुनकर रसकी सामग्री सम्पूर्ण रूपमें समझ गये। उनका चित्त प्रेममें विभोरहो गया है। प्रेम अस्फुट है। उसे भली-भाँति समझकर वे गुरुदेवके चरणों में गिरकर रोते-रोते बोले—प्रभो! आप कृपाकर यह बतलाइये कि मेरे हृदय में क्या प्रेम अब भी अस्फुट है?

गुरु गोस्वामीजीने विजयको आलिङ्गन करते हुए कहा—तुम कल प्रेमतत्त्व समझ सकोगे। तुमने प्रेम-सामग्री तो जानली है, परन्तु अब भी तुम्हारे हृदयमें प्रेम स्पष्ट रूपसे उदित नहीं हो पाया है। स्थायीभाव ही प्रेम है। स्थायी भावके सम्बन्धमें तुमने पहले साधारणरूपमें तो श्रवण किया है, परन्तु अब उज्ज्वल रसमें उसके सम्बन्धमें विशेष रूपसे श्रवण करने पर तुम्हारी सर्व सिद्धि हो जायेगी। आज बहुत देर हो गयी इससे आगे कल बताऊँगा।

विजय की आँखोंसे पुनः अश्रु-बूँद टपकने लगे। वे साष्टाङ्ग प्रणाम कर श्रुत-विषयका चिन्तन करते करते वासस्थान को लौटे।

॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

* छत्तीसवाँ अध्याय *

मधुररस-विचार

आज ठीक समय पर विजयकुमार श्रीगुरुदेवके श्रीचरणोंमें उपस्थित हुए और उनको साष्टाङ्ग दण्डवत् कर अपने स्थान पर बैठे। श्रीगोपाल गुरु गोस्वामीने विजय को स्थायी-भाव जाननेकी उत्सुकता लक्ष्य कर बोले—'मधुरा' रति ही मधुररसका स्थायी भाव है।

विजय—'रति के आविर्भावका हेतु क्या है?

गोस्वामी—'अभियोग, विषय, सम्बन्ध, अभिमान तदीय विशेष, उपमा और स्वभाव से रति उदित होती है। उक्त हेतु-समूह उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होने के कारण स्वभाव से जो रति उदित होती है, वही सर्व-श्रेष्ठ रति होती है।

विजय—अभियोग किसे कहते हैं?

गोस्वामी—भाव प्रकाश का नाम ही अभियोग है। अभियोग दो प्रकारके होते हैं-स्वकर्तृक और परकर्तृक।

विजय—विषय किसे कहते हैं?

गोस्वामी—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय हैं।

विजय—सम्बन्ध किसे कहते हैं?

गोस्वामी—कुल, रूप, गुण और लीला—इन चार प्रकार की सामग्रियोंके गौरवको सम्बन्ध कहते हैं।

विजय—अभिमान किसे कहते हैं?

गोस्वामी—अनेक सुन्दर वस्तुएँ रहने पर किसी खास वस्तु को ही लेनेके निश्चित निर्णयको अभिमान कहते हैं। जैसे कृष्ण मथुरा चले गये हैं। उस समय कृष्णके प्रति जातरति किसी व्रजबालाकी जो अब तक अपूर्ण यौवन के कारण श्रीकृष्ण-संग प्राप्त नहीं हो सकी थी। वयः सुषमाको देखकर उसकी एक सखीने निर्जनमें उससे परिहासके लिये कहा—'सखी!

श्रीकृष्ण तो व्रज छोड़कर चले गये और तुम्हारा नव यौवन आदि इसप्रकार विकाशित हो रहा है। अतएव इस व्रजमें और भी तो परम सुन्दर और गुणी युवक हैं, यदि तुम उनमेंसे किसीके साथ विवाद करना चाहती हो तो मुझे चुपकेसे बतला दो, मैं तुम्हारी मातासे कह कर वैसा ही व्यवस्था करवा दूँगी।' सखी की बात सुनकर व्रजबालाने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया-'हे सखी! पृथ्वी में एकसे एक सुन्दर और माधुर्य तरंगवाही अनेकों विदग्धशाली युवक होंगे—वे रहें, गुणशालिनी युवतियाँ उनको वरण करें। परन्तु जिसके सिर पर मोरमुकुट नहीं है, जिसके मुखमें मुरली विराजित नहीं है एवं जिसके शरीरमें गैरिक आदि धातुओंके तिलकादि सुशोभित नहीं हैं, मैं उसे तृणके समान भी नहीं चाहती। यही अभिमान का उदाहरण है।

विजय—अभिमान समझ गया, तदीय-विशेष किसे कहते हैं?

गोस्वामी—कृष्णके पद-चिह्न, गोष्ठ अर्थात् वृन्दावनाश्रित गोष्ठ और उनके प्रियजन ही 'तदीय विशेष' कहलाते हैं। कृष्णके प्रति राग, अनुराग और महाभाव युक्त जन ही प्रियजन हैं।

विजय—उपमा किसे कहते हैं?

गोस्वामी-जब एक वस्तु दूसरी वस्तुका कुछ अंशोंमें सादृश्य लाभ करती है, तो उसे उपमा कहते हैं। यहाँ श्रीकृष्णका कुछ सादृश्य ही उपमा कही जाती है।

विजय-स्वभाव किसे कहते हैं?

गोस्वामी-जो धर्म किसी दूसरे कारणोंकी अपेक्षा न कर स्वतः प्रकाशित हो, उसे 'स्वभाव' कहते हैं। स्वभाव दो प्रकार के होते हैं-निसर्ग और स्वरूप।

विजय—निसर्ग किसे कहते हैं?

गोस्वामी-सुदृढ़ अभ्यासजन्य वासना या संस्कार को 'निसर्ग' कहते हैं। गुण, रूप और श्रवण आदि उसके उद्बोधनके ईषत् हेतु मात्र है। तात्पर्य यह कि जीव के अनेक जन्म सिद्ध सुदृढ़ स्वभ्यासस जो संस्कार होता है, वही निसर्ग कहलाता है। कृष्णके गुण-रूप आदिका श्रवण कर जो अकस्मात् उद्बोध होता है। यही उसका यथार्थ एवं सम्पूर्ण कारण नहीं है।

विजय—स्वरूपके सम्बन्धमें बतलाइये।

गोस्वामी-अजन्य (जो कभी पैदा न हो), अनादि, स्वतःसिद्ध भावको स्वरूप कहा जा सकता है। स्वरूप तीन प्रकार के होते हैं-कृष्णनिष्ठ, ललनानिष्ठ और उभयनिष्ठ। कृष्णनिष्ठ स्वरूप दानव स्वभाववाले व्यक्तियों के लिए अप्राप्य है। अतएव अदैत्य अर्थात् देवस्वभाववाले मनुष्यों के लिये सुलभ हैं। ललनानिष्ठ स्वरूप स्वयं उद्बुद्ध (प्रकाशित) होता है तथा श्रीकृष्णके रूप गुणोंके दर्शन और श्रवणके बिना भी श्रीकृष्णके प्रति वेगसे रति प्रकाश करताहै। कृष्णनिष्ठ और गोपाललनानिष्ठ ये दोनों स्वरूप ही जिस स्वभाव में प्रकाशित होते हैं, उसे उभयनिष्ठ स्वरूप कहते हैं।

विजय-अभियोग, विषय, सम्बन्ध, अभिमान, तदीय-विशेष, उपमा और स्वभाव-इन सात हेतुओं से क्या सब प्रकार की मधुर रति उदित होती है?

गोस्वामी—गोकुल-ललनाओं की कृष्णरति स्वभावज अर्थात् स्वरूप सिद्ध होती है, जो अभियोग आदि द्वारा उदित नहीं होती। परन्तु अनेकों विलासों में ये हेतु भी कार्य करते हैं। साधन-सिद्ध और निसर्ग सिद्ध साधकों की रति अभियोग आदि द्वारा उद्बुद्ध होती है।

विजय—इस विषय को भली-भाँति समझ नहीं सका, दो-एक उदाहरण देकर समझानेकी कृपा करें।

गोस्वामी-जिस रतिके विषयमें बतलाया जा रहा है, वह रति केवल रागानुगा भक्तिसे ही उदित होती है। वैधीभक्ति जब तक भावमयी नहीं हो जाती, तब तक उससे उक्त रति बड़ी दूर होती है। साधन-दशा में व्रज ललनाओं की कृष्णसेवाकी भावचेष्टाओंको देखकर जिसको उसके प्रति लोभ होता है, वे स्वभावके अतिरिक्त अन्य छः कारणोंसे विशेषतः प्रियजनसे क्रमशः रति लाभ करते हैं। साधनसिद्ध होने पर वे ललनानिष्ठ स्वरूपकी स्फूर्ति प्राप्त होते हैं।

विजय-रति कितने प्रकार की होती है?

गोस्वामी--रति तीन प्रकारकी होती है-साधारणी समंजस्या और समर्था।

कुब्जाकी रति साधारणी रतिका उदाहरण है। साधारणी रतिके मूलमें संभोगकी इच्छा रहनेके कारण उसका तिरस्कार किया गया है। महिषियों (द्वारकाकी महिषियों) की रति—समंजसा कहलाती है; क्योंकि इसमें लोकधर्मकी अपेक्षा होती है तथा यह विवाह विधि द्वारा उद्बुद्ध होती है। अर्थात् मैं इनकी पत्नी हूँ, ये मेरे पति हैं—इस भावसे यह रति सीमित होती है। गोकुलवासियोंकी रति समर्था होती है,क्योंकि ऐसी रति लोक-मर्य्यादा और धर्मकी सीमाको भी पार कर विराजमान होती है। समर्था रति असमंजसा नहीं होती, बल्कि परम पारमार्थिक विचारसे समर्था रति ही अति समंजसा होती है। साधारणी रति मणि जैसी है, समंजसा रति चिन्तामणि जैसी है तथा समर्था रति कौस्तुभमणि जैसी परम दुर्लभ होती है।

विजयकी आँखें सजल हो आयीं। वे रोते-रोते बोले—आज मैं बड़ा ही भाग्यशाली हूँ कि ऐसे अपूर्व विषयका श्रवण कर रहा हूँ। प्रभो! कृपा कर अब साधारणी रतिका लक्षण बतलाईये।

गोस्वामी—कृष्णको सामने दर्शनकर मोहित होकर संभोगकी इच्छासे जो रति आविर्भूत होती है—जो रति गाढ़ी नहीं होती—वह साधारणी रति कहलाती है। यह रति गाढ़ी या स्थायी नहीं होती। संभोगकी इच्छा ह्रास होने पर इस प्रकारकी रतिका भी ह्रास हो पड़ता है। यह निम्नकोटिकी श्रेणीमें होती है।

विजय—समंजसा रति कैसी होती है?

गोस्वामी—रूप और गुण आदिके श्रवणसे उत्पन्न—'मैं उनकी पत्नी हूँ, वे मेरे पति हैं—इस भावनासे पूर्ण गाढ़ी-रति ही समंजसा रति कहलाती है। कभी-कभी इसमें संभोग-इच्छा भी उदित होती है। जब समंजसा रतिसे पृथक्रूपमें संभोग-इच्छा प्रतीत होतीहै उस समय संभोग-इच्छासे उत्पन्न हाव, भाव और हेला आदि द्वारा अथवा स्वाभियोग प्रकाशन द्वारा श्रीकृष्णको वशीभूत करना असंभव होता है।

विजय—समर्थारति कैसी होती है?

गोस्वामी—प्रत्येक प्रकारकी रतिमें संभोगकी इच्छा विद्यमान होती है। साधारणी और समंजसा रतिमें संभोगकी इच्छा स्वार्थपरा होती है। वैसी स्वार्थपरा संभोगेच्छासे निःस्वार्थ लक्षण किसी विशेष भावको प्राप्त संभोगेच्छाके साथ तादात्म्य अर्थात् एक ही भावको प्राप्त रति ही 'समर्था' कहलाती है।

विजय—वह विशेष भाव कैसा होता है? इसे तनिक स्पष्ट करनेकी कृपा करें।

गोस्वामी—संभोगेच्छा दो प्रकार की होती है—(१) अपनी इन्द्रियों की तृप्तिके लिये—सुखके लिये, प्रियतम द्वारा संभोगकी इच्छा और (२) अपने द्वारा प्रियतमकी इन्द्रिय तर्पण-सुख-भावनामयी सम्भोगकी इच्छा। पहले प्रकारकी इच्छाको 'काम' कहा जा सकता है, क्योंकि उसमें अपने सुखकी कामना होती है। दूसरे प्रकारकी इच्छामें एकमात्र अपने प्रियतमका सुख ही निहित होता है; इसलिये उसे प्रेम' कहा गया है। साधारणी रतिमें पहले प्रकारकी इच्छा अर्थात काम ही प्रबल होता है; समंजसामें वैसी इच्छा प्रबल नहीं होती। शेषोक्त लक्षण अर्थात प्रियतमके सुखकी इच्छा ही समर्था रतिके सम्भोग-इच्छाका विशेष धर्म है।

विजय—सम्भोगमें प्रियतमका स्पर्शसुख अवश्य ही उपलब्ध होता है। क्या इस सुखकी इच्छा भी समर्था रतिमें नहीं होती?

गोस्वामी—अवश्य ही ऐसी इच्छासे सम्पूर्ण रूपसे रहित होना बहुत ही कठिन है, फिर भी समर्थाके हृदयमें वैसी इच्छा होने पर भी अत्यन्त दुर्बल होती है। इसी विशेषके सहारे रति ही बलवती होकर वैसी विशिष्ट सम्भोगेच्छा को क्रोड़ीभूत कर रति और सम्भोगेच्छाकी एकात्मता प्राप्त होती है। वैसी रति ही सबसे बढ़कर सामर्थ्ययुक्त होनेके कारण 'समर्था' नामसे प्रसिद्ध है।

विजय—समर्थारतिका विशेष माहात्म्य क्या है?

गोस्वामी—पूर्वोक्त अभियोग आदिमें अन्वय अर्थात् सम्बन्ध अथवा तदीयसे हो अथवा रतिके स्वाभाविक स्वरूपसे ही क्यों न हो, यह समर्था रति उत्पन्न होनेके साथ-साथ कुल, धर्म, धैर्य और लज्जा आदि समस्त प्रकारकी विघ्न-बाधाओं का विस्मरण हो जाता है एवं वैसी रति अत्यन्त गाढ़ी होती है।

विजय—संभोगेच्छा शुद्धारतिके साथ मिलकर किस प्रकार एकात्मता को प्राप्त होती है ?

गोस्वामी—व्रजललनाओंकी समार्थारति केवल कृष्णके सुखके लिए होती है। उनका सम्भोगमें जो अपना-सुख होता है, वह भी कृष्णके अनुकूल ही होता है। अतएव सम्भोगेच्छा और कृष्णसुखमयी रति सर्वापेक्षा अधिक विलासोर्मि (विलासलहरी) चमत्कारी शोभा धारणकर अपनेसे सम्भोगेच्छाकोपृथक रूपमें रहने नहीं देती। यह रति कभीकभी समंजसामें स्वयं पर्यवसित हो सकती है।

विजय—अहा ! क्या ही अपूर्व यह रति है ! इसका चरम माहात्म्य श्रवण करना चाहता हूँ।

गोस्वामी—यह रति प्रौढ़ा भाव प्राप्त होकर महाभाव दशाको प्राप्त होती है। समस्त विमुक्त पुरुष इस रतिका अन्वेषण करते हैं और पाँच प्रकार के भक्त, जिनका जितना साध्य (सामर्थ्य) होता है प्राप्त करते हैं।

विजय—प्रभो ! मैं इस रतिका क्रमविकाश जानना चाहता हूं।

गोस्वामी—स्वाश्रयेऽयं रतिः प्रेम्ना प्रोद्यन् स्नेहःक्रमादयं।
स्यान्मनः प्रणयो रागोऽनुरागो भाव इत्यपि ॥
(उज्ज्वल० स्थायीभाव प्र० ४४)

तात्पर्य यह कि यह मधुर रति विरुद्धभाव द्वारा अभेद्यरूपसे दृढ़ होती है। तब उसका नाम 'प्रेम' होता है। वही प्रेम क्रमशः अपना माधुर्य प्रकाशकर स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भावके रूपमें प्रकाशित होता है।

विजय—प्रभो ! इसका एक उदाहरण देकर समझाने की कृपा करें।

गोस्वामी—जैसे गन्नाका बीज क्रमशः गन्ना, रस, गुड़, खण्ड, शर्करा, सिता और सितोत्पल होता है, उसी प्रकार रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव—ये सब एक ही वस्तुके ही क्रमोन्नति हैं। यहाँ 'भाव'-शब्द से महाभावका तात्पर्य है।

विजय—इन भिन्न-भिन्न नामोंके रहते हुए भी एक 'प्रेम' शब्द से ही समस्त भावोंको क्यों कहा जाता है ?

गोस्वामी—उपरोक्त स्नेहादि छहों प्रेमके विलास क्रम हैं। इसलिये पंडितगण 'प्रेम' शब्दसे उन सबको उद्देश्य करते हैं। जिनका जिस जातीयका कृष्ण-प्रेम उदित हुआ है, उनके प्रति श्रीकृष्णका भी उसी जातीयका प्रेम उदित हुआ करता है।

विजय—प्रेमका लक्षण क्या है ?

गोस्वामी—मधुर रसमें युवक-युवतियोंमें ध्वंसका कारण रहने पर भी, उनमें परस्पर जो ध्वंसरहित भावबन्धन होता है, वही प्रेम है।

विजय—प्रेमके कितने भेद हैं ?

गोस्वामी—तीन हैं—प्रौढ़, मध्य और मन्द।

विजय—प्रौढ़ प्रेम कैसा होता है ?

गोस्वामी—जिस प्रेममें मिलनमें विलम्ब होने पर प्रियतमके हृदयमें जो कष्ट होगा, उसे दूर करनेके लिए प्रेमी व्यक्तिके अन्तःकरणमें छटपटाहट होती है उसे 'प्रौढ़प्रेम' कहते हैं।

विजय—मध्यप्रेम किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—जिस प्रेममें प्रेमी व्यक्ति अपने प्रियतमके क्लेशानुभवको सह लेता है, वह मध्यप्रेम है।

विजय—मन्दप्रेम किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—जिस प्रेममें किसी विशेष काल और स्थानमें विस्मृति हो पड़ती है, अथवा सब समय घनिष्ट परिचय होने तथा एक साथ रहनेके कारण जिस प्रेममें त्याग या आदर आदि कुछ भी नहीं होता, उसे 'मन्दप्रेम' कहते हैं। प्रेम मन्द होने पर भी उसमें अनादर या उपेक्षा नहीं होती।

विजय—इस विषयमें और भी कुछ जानने योग्य बातें हों तो बतलानेकी कृपा करें।

गोस्वामी—प्रौढ़, मध्य और मन्दजातीय प्रेमको

एक दूसरे प्रकारके लक्षण द्वारा भी सहज ही समझा जा सकता है। जिसमें विच्छेदकी असहिष्णुता प्रकाशित हो, वह प्रौढ़ प्रेम है। जिसमें विरह दुःख कष्टसे सहा जा सकता है, वह मध्य-प्रेम है और जिस प्रेममें किसी विशेष स्थितिमें विस्मरण हो जाय, उसे मन्दप्रेम कहते हैं।

विजय—प्रेम समझ गया। अब स्नेहका लक्षण बतलाईये।

गोस्वामी—जो प्रेम चरम सीमाको प्राप्त होकर चित्तरूप प्रदीपको प्रकाश कर हृदयको भी द्रवीभूत करता है, उसे 'स्नेह' कहते हैं। चित्त शब्दसे प्रेम रूप विषयकी उपलब्धिसे तात्पर्य है। स्नेहका तटस्थ लक्षण यह है कि प्रिय विषयको बार-बार दर्शन करके भी तृप्ति नहीं होती।

विजय—क्या स्नेह के परिमाणके अनुसार इसमें भी उत्तम और कनिष्ठ आदिके भेद हैं?

गोस्वामी—हाँ, स्नेहके तारतम्यानुसार इसके भी तीन भेद हैं—उत्तम, मध्य और कनिष्ठ। कनिष्ठ स्नेहीका प्रिय व्यक्तिके अङ्ग-स्पर्शसे मन द्रवित होता है, मध्यम स्नेहीका प्रियव्यक्तिके दर्शनसे ही द्रवता होती है और उत्तम स्नेहीका प्रिय-व्यक्ति (प्रिततम) के सम्बन्धमें कुछ श्रवण करनेसे ही चित्त द्रवित हो पड़ता है।

विजय—स्नेह कितने प्रकारके हैं?

गोस्वामी—स्नेह स्वरूपतः दो प्रकारका होता है—घृतस्नेह और मधुस्नेह।

विजय—घृतस्नेह किसे कहते हैं?

गोस्वामी—अत्यन्त आदरमय स्नेह ही 'घृतस्नेह' कहलाता है। घृत जिस प्रकार मिश्री आदिके साथ मिलकर ही अत्यन्त सुस्वादु होता है, मधुकी भांति स्वयं मीठा नहीं होता, उसी प्रकार घृतस्नेह भी गर्व-सूया आदि भावोंके साथ मिलित होने पर ही परम आस्वादनीय अवस्थाको प्राप्त होता है, मधुस्नेहकी भांति यह स्वयं माधुर्यवाही नहीं होता। घृतस्नेह निसर्गतः शीतल होता है। इसलिये परस्परके आदर से घनीभूत होकर गाढ़ा आदरमय बन जाता है। अर्थात् घृत जिस प्रकार सहज शीतल पदार्थ के संगसे घना हो जाता है, उसी प्रकार घृतस्नेह भी नायक नायिकाके परस्पर आदर संयोगको प्राप्त होकर घना बन जाता है। घृतका लक्षण होनेके कारण इसे घृतस्नेह कहते हैं।

विजय—आपने ऊपर जिस आदर का उल्लेख किया है, वह आदर क्या है?

गोस्वामी—गौरवसे आदर जन्मता है। अतएव आदर और गौरव परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। रति आदि में रहने पर भी स्नेहमें वह सुव्यक्त होता है।

विजय—गौरव किसे कहते हैं?

गोस्वामी—'ये गुरुजन हैं'—इस बुद्धि का नाम ही 'गौरव' है। गौरव बुद्धिसे जो भाव उदित होता है, उसे 'संभ्रम' कहते हैं। उसीको आदर कहते हैं। आदर और गौरव परस्पर आश्रित होते हैं। अतएव आदर कहने से ही उसमें गौरव है—ऐसा समझना होगा।

विजय—मधु स्नेह कैसा होता है?

गोस्वामी—प्रिय व्यक्तिके प्रति 'ये मेरे हैं'—ऐसे मदीयत्व अतिशय युक्त स्नेहको मधुस्नेह कहते हैं। यह दूसरे भावोंकी अपेक्षा न करके स्वयं माधुर्य प्रकट करता है। यह स्नेह स्वयं माधुर्यमय होता है तथा इसमें नाना रसोंका मिलन है। इसमें उन्मादकता-धर्मवशतः उष्णता भी है। इसलिये मधु जैसा लक्षण रहने के कारण इसे मधुस्नेह कहा गया है।

विजय—मदीयत्व किसे कहते हैं?

गोस्वामी—रति में दो भावनाएं कार्य करती हैं। 'मैं उनकी हूँ'—यह एक प्रकार की भावनामयी रति है। 'वे मेरे हैं'—यह दूसरी प्रकारकी भावना-मयी रति है। घृतस्नेह में 'मैं उनकी हूं'—यह भाव बलवान रहता है। मधुस्नेहमें 'वे मेरे हैं'—यह भाव प्रबल होता है। चन्द्रावलीमें घृतस्नेह है और श्रीमती राधिकामें मधुस्नेह है। ये दोनों भाव ही मदीयत्व हैं।

इन दो प्रकारके भावोंका श्रवणकर विजयको रोमांच हो आया। वे प्रेमसे गद्गद् होकर श्रीगुरु

गोस्वामीको दण्डवत्-प्रणामकर बोले—आज मैं धन्य हो गया। मेरा मनुष्य जन्म सफल हो गया। आपके उपदेशामृतका श्रवणकर श्रवणकी पिपासा तृप्त नहीं हो रही है। अब अनुग्रहपूर्वक मानके सम्बन्धमें बतलाइये।

गोस्वामी—जो स्नेह उत्कर्षप्राप्तिपूर्वक युगलको (नायक-नायिकाको) नूतनमाधुर्य अनुभव कराकर स्वयं बाहरसे कुटिल या वक्र भाव धारण करता है—उसे मान कहते हैं।

विजय—मान कितने प्रकारका होता है?

गोस्वामी—उदात्त और ललित भेदसे मान दो प्रकारका होता है।

विजय—उदात्तमान किसे कहते हैं?

गोस्वामी—उदात्तमान भी दो प्रकारका होता है। एक तो बाहरमें दाक्षिण्य और भीतर वाम्यभाव लेकर होता है। और दूसरा सदुर्बोध्य परिपाटी लाभ कर मनके भावोंको गोपन रखकर वाम्यगन्धयुक्त और गांभीर्यलक्षणयुक्त होता है। घृतस्नेह ही उदात्तमान होता है।

विजय—ललितमान किसे कहते हैं? इसमें न जाने क्यों मेरी अधिक रुचि हो रही है, कह नहीं सकता।

गोस्वामी—मधुस्नेह स्नेहोद्रेकस्वभावसे उथलकर निर्गलतावशतः अतिमधुर वक्रता और नर्मविशेष वहनकर 'ललित' मान होता है। यह भी कौटिल्य और नर्म-भेदसे दो प्रकार का होता है। स्वतंत्ररूपमें हृदयगत कौटिल्य धारणपूर्वक जो मान होता है, उसे 'कौटिल्यललित' मान कहते हैं। नर्मविशेष मान ही नर्मललित मान कहलाता है। दोनों प्रकारके ललित मान ही मधुस्नेहसे उदित होते हैं।

विजय—प्रणय किसे कहते हैं?

गोस्वामी—प्रियतमके साथ अभेद मननरूप विश्रंभयुक्त मान ही 'प्रणय' कहलाता है।

विजय—यहाँ विश्रंभका तात्पर्य क्या है?

गोस्वामी—प्रणयका स्वरूप ही 'विश्रंभ' है। मैत्र और सख्यके भेदसे विश्रंभ दो प्रकारका होता है। दृढ़ विश्वासको विश्रंभ कहते हैं। विश्रंभ प्रणय का कोई निमित्त कारण नहीं है—उपादान कारण है।

विजय—मैत्र-विश्रंभ किसे कहते हैं?

गोस्वामी—विनययुक्त विश्रंभ ही 'मैत्र विश्रंभ' कहलाता है।

विजय—सख्य-विश्रंभ किसे कहते हैं?

गोस्वामी—सब प्रकारके भयसे मुक्त स्वाधीनता-प्रचुर विश्रंभ ही 'सख्य विश्रंभ कहलाता है।

विजय—प्रणय, स्नेह और मान—इनके परस्पर के सम्बन्धके विषयमें कुछ स्पष्ट रूपसे बतलानेकी कृपा करें।

गोस्वामी—किसी जगह स्नेहसे प्रणय उत्पन्न होकर मानधर्म को प्राप्त होता है। कहीं-कहीं स्नेहसे मान होकर प्रणयत्वको प्राप्त होता है। अतएव मान और प्रणयका अन्योन्य कार्यकारणता है। विश्रंभको पृथक् रूपसे इसीलिये वर्णन किया जाता है। उदात्त और ललित-भेदसे मैत्र और सख्य सुसंगत होता है। फिर सुमैत्र और सुसख्य होनेके कारण उनका प्रणयमें भी विचार होता है।

विजय—अब रागका लक्षण बतलाइये।

गोस्वामी—प्रणयकी उत्कर्षावस्थामें जब अतिशय दुःख भी सुख जैसा प्रतीत होता है, तब वैसे प्रणयको 'राग' कहते हैं।

विजय—राग कितने प्रकारका होता है?

गोस्वामी—राग दो प्रकारका होता है—नीलिमा राग और रक्तिमाराग।

विजय—नीलिमाराग कितने प्रकारका होता है?

गोस्वामी—नीली-राग और श्यामा-रागके भेदसे नीलिमाराग दो प्रकारका होता है।

विजय—नीलीराग कैसा होता है?

गोस्वामी—जिस रागके मन्द पड़नेकी संभावना नहीं होती और बाहरमें जो अतिशय प्रकाशमान होकर अपने संलग्न दूसरे भावोंको ढक लेता है, उसे नीली राग कहते हैं। यह राग चन्द्रावली और कृष्णमें लक्षित होता है।

विजय—श्यामा राग किसे कहते हैं?

गोस्वामी—नीली रागसे औषधिसेक आदि द्वारा कुछ अधिक प्रकाशशील एवं विलम्ब साध्य जो राग होता है, वह श्यामाराग है।

विजय—रक्तिमा-राग कितने प्रकारका होता है ?

गोस्वामी—दो प्रकारका होता है—कुसुंभराग और मंजिष्ठासंभवराग।

विजय—कुसुंभराग किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—जो राग चित्तमें जल्द-से-जल्द सञ्चारित होता है तथा दूसरे रागोंकी कान्तिको प्रकाश करके भी स्वयम् भी आवश्यकता के अनुसार शोभित होता है, उसे कुसुंभराग कहते हैं। आधार-विशेषमें कुसुंभराग स्थिर होता है। परन्तु कृष्णकी प्रियाओंमें मंजिष्ठके मिश्रण होने पर कभी-कभी म्लान भी होता है।

विजय—मंजिष्ठ राग किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—जो राग कभी भी नष्ट नहीं होता, सदा स्थिर रहता है अर्थात् नीलीकुसुंभ आदि की तरह मलीन नहीं होता—दूसरोंकी अपेक्षासे रहित अर्थात् स्वतःसिद्ध होता है, श्रीमती राधाकृष्णके ऐसे रागको ही मंजिष्ठराग कहते हैं। सिद्धान्त यह है कि घृत, स्नेह, उदात्त, मैत्र, सुमैत्र, नीलिमा आदि पहले कहे गये भावसमूह चन्द्रावली और रुक्मिणी आदि महिषियोंमें लक्षित होते हैं। मधु, स्नेह, ललित, सख्य, सुसख्य और रक्तिम आदि उत्तरोत्तर भाव समूह श्रीराधिकामें परिलक्षित होते हैं। ये भाव-समूह कभी-कभी सत्यभामा और समय-विशेष पर लक्ष्मणामें भी प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार के भावभेद से गोकुल देवियोंमें स्वपक्ष और विपक्ष आदि जो भेद होते हैं, उनका विचार आलम्बन-विभावके प्रसंगमें पहले ही किया जा चुका है। भक्तिरसामृतसिन्धु में बतलाये गये दूसरे-दूसरे ४१ मुख्य भावोंके सम्बन्धसे (उनमें आपसमें मिलने से) जो विविध प्रकारके भेद हो सकते हैं और दूसरे समस्त प्रकारके भेदोंको पण्डित व्यक्ति प्रज्ञाके बलसे—पारमार्थिक बुद्धिके सहारे समझ लेते हैं। यहाँ उनकी पृथक रूपमें व्याख्या नहीं की गयी।

विजय—'भावान्तर'-शब्दसे किन-किन भावोंको समझना होगा ?

गोस्वामी—स्थायीमधुर भाव, तैंतीस व्यभिचारी भाव और हास्य आदि सात—कुल मिलाकर इन ४१ भावोंको यहाँ भावान्तर कहा गया है।

विजय—रागके विषयमें समझ गया। अब अनुरागकी व्याख्या करें।

गोस्वामी—जो राग स्वयं नित्य-नवीन भावमें सदा अनुभूत प्रियको प्रतिक्षण नवीन कर देता है; उसे 'अनुराग' कहते हैं।

विजय—यह अनुराग और क्या-क्या विचित्रता प्रकाश करता है ?

गोस्वामी—परस्पर वशीभाव, प्रेमवैचित्य और अप्राणियोंमें भी जन्म ग्रहण करनेकी लालसा आदि रूपोंमें अनुराग प्रकाशित होता है तथा विप्रलंभरूपमें कृष्णकी स्फूर्ति कराता है।

विजय—परस्पर वशीभाव और अप्राणियोंमें जन्म ग्रहणकी लालसा तो सहज ही समझ गया, कृपया प्रेम-वैचित्यके सम्बन्धमें उपदेश करें।

गोस्वामी—विप्रलंभको ही प्रेम वैचित्य कहते हैं। इसके सम्बन्धमें पीछे बतलाऊँगा।

विजय—अच्छी बात है। तब महाभावके संबंध में बतलानेकी कृपा कीजिए।

गोस्वामी—वत्स ! व्रजरसके विषयमें मेरी जानकारी अतिशय शुद्र है। कहाँ मैं और कहाँ परमोन्नत महाभावका वर्णन ! फिर भी श्रीरूप गोस्वामी और पण्डित गोस्वामीकी कृपाशिक्षाके बल पर तथा श्रीरूप गोस्वामीके निर्देशके अनुसार मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे उन्हींकी कृपासे ही अनुभव करो। यावदाश्रय वृत्तिरूपमें अनुराग स्वयं वेद्यदशाको प्राप्त होकर प्रकाशित होने पर वही भाव या महाभाव होता है।

विजय—प्रभो ! मैं अतिशय दीन-हीन और मूर्ख जिज्ञासु हूँ। मेरी समझने योग्य भाषामें सरल और

सहज रूप में महाभाव का लक्षण बतलावे तो बड़ी कृपा होगी।

गोस्वामी—श्रीराधिकाजी अनुरागकी आश्रय हैं और कृष्ण उसके विषय हैं। श्रीनन्दनन्दन शृङ्गार रूपमें विषय-तत्त्वकी सीमा हैं और श्रीराधाजी आश्रय-तत्त्वकी सीमा हैं। तात्पर्य यह कि श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ अनुरागके विषय हैं और श्रीराधाजी उसके सर्वश्रेष्ठ आश्रय हैं। उनका अनुराग ही स्थायी भाव है। वही अनुराग अपनी चरम सीमाको पहुँचकर यावदाश्रयवृति होता है एवं उसी अवस्थामें स्वयं वेद्यदशा अर्थात् तत्प्रेयसीजन विशेषकी संवेद्य दशाको प्राप्त होकर यथासमयमें सुदीप्त आदिके द्वारा प्रकाशमान होता है।

विजय—अहा! महाभाव! महाभाव! महाभाव किसे कहते हैं—आज मैं कुछ-कुछ समझा। समस्त भावोंकी चरम सीमा ही महाभाव है। इस महाभाव का उदाहरण सुननेकी बड़ी उत्कंठा हो रही है, कृपया सुना कर मेरे कानोंको तृप्त करें।

गोस्वामी—

राधाया भवतश्च चित्तजतुनी स्वेदैर्विलाप्यक्रमात्
युंजद्विनिकुंजरपते ! निर्धूत भेद भ्रमम् ।
चित्राय स्वयमन्वरञ्जयदिह ब्रह्माण्डहर्म्योदरे
भूयोभिर्नवरागहिङ्गुलभरैः शृंगारकारुकृती ॥

यह श्लोक ही महाभावका उदाहरण है। निकुंजों में विहरणशील श्रीराधाकृष्णके अनुराग पराकाष्ठको अनुभव करती हुई वृन्दादेवी कृष्णसे कहती हैं—

हे शैलकुञ्जोंमें विहारकरनेवाले मत्त गजराज! शृङ्गाररूप सुनिपुण शिल्पीने भावोष्मारूप अग्नितप द्वारा राधा और तुम्हारे दोनोंके चित्तरूप लाक्षा (लाह) को द्रवीभूत कर (गलाकर) धीरे-धीरे दोनोंको एकत्र कर भेदभ्रमको दूर कर दिया है (अर्थात् भेदरहित कर दिया है) और इस ब्रह्माण्ड रूप देवगृहमें उसी व्यापारका चित्र अंकन करनेके लिये नवरागरूप हिंगुलसमूहका प्रयोग कर स्वयं ही अनुरंजन (रक्तवर्ण) किया है [दोनोंके चित्तको अनुरक्त किया है] यहाँ 'भेदभाव-दूरीकरण' ही स्वसंवेद्यदशाको प्राप्त होना है। 'ब्रह्माण्डरूप अट्टालिका समूहमें' आदि द्वारा यावदाश्रयवृत्तिका बोध होता है और 'अनुरंजन किया है' इससे प्रकाशितत्वकी सूचना है।

विजय—इस महाभावकी स्थिति कहाँ है?

गोस्वामी—यह महाभाव रुक्मिणी आदि महिषियोंमें भी अति दुर्लभ है, केवलमात्र श्रीराधा आदि व्रजदेवियोंके ही अनुभवगम्य है।

विजय—इसका तात्पर्य क्या है?

गोस्वामी—जहाँ नायिका नायकके साथ विवाह-विधिसे बँधी हुई है, वहाँ स्वकीयाभाव होता है। स्वकीयाभावमें रति समञ्जसा होती है। अर्थात् वह महाभाव आदि परमोच्च अवस्थाको प्राप्त होनेमें समर्थ नहीं होती। व्रजमें भी किसी-किसीमें स्वकीयाभाव होता है, परन्तु यहाँ परकीयभाव ही प्रबल होता है। यहां पर रति समर्था होनेके कारण चरमसीमाको प्राप्त होकर महाभाव अवस्था तकको प्राप्त होती है।

विजय—महाभावके कितने भेद हैं?

गोस्वामी—परम अमृतस्वरूप श्रीमहाभाव चित्त (मन) को आकर्षण कर स्व-स्वरूपताको प्राप्त कराता है। महाभाव दो प्रकारका होता है—रूढ़ और अधिरूढ़।

विजय—रूढ़ महाभाव किसे कहते हैं?

गोस्वामी—जिसमें सात्त्विकभावसमूह उदीप्त हों, उसे रूढ़महाभाव कहते हैं।

विजय—रूढ़ महाभावके अनुभावोंको बतलानेकी कृपा करें।

गोस्वामी—क्षणभरका समय भी असह्य होना, उपस्थित जनसमुदायका हृदयविलोड़न, कल्प-क्षनत्व (एक कल्पका समय भी क्षणभरका प्रतीत होना), श्रीकृष्णके सुखी रहने पर भी उनके कष्टकी आशङ्कासे खिन्न होना, मोहसे रहित होने पर भी आत्मा आदि सब कुछका विस्मरण होना तथा क्षणभरका समय भी कल्प जैसा प्रतीत होना—इन अनुभावोंमें से कुछ तो संभोगमें और कुछ विप्रलम्भमें अनुभूत होते हैं।

विजय—'क्षणभरका समय भी असह्य होता है'—इसे उदाहरणके साथ समझानेकी कृपा करें ।

गोस्वामी—यह भाव वैचित्त्य-विप्रलम्भ है । संयोगमें भी वियोगका भान होता है । इसमें क्षणभर का वियोग भी असहनीय होता है । कुरुक्षेत्रमें गोपियोंने श्रीकृष्णको बहुत दिनोंके बाद दर्शन कर अपने नेत्रके ऊपर पलकोंके निर्माता ब्रह्माजीको शाप दिया था । क्योंकि आँखोंकी पलकें उनके कृष्ण-दर्शन में बाधक हो रही थीं—पलक मारनेका समय भी उन्हें असह्य होता था ।

विजय—"उपस्थित जनसमुदायका हृदय विलोड़न" किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—कुरुक्षेत्रमें कृष्ण-दर्शनको आयी हुई गोपियोंके अलौकिक अनुरागको देखकर वहाँ उपस्थित रुक्मिणी आदि महिषियों और युधिष्ठिर आदि राजाओंका चित्त जिस प्रकार विलोड़ित (मथित) हुआ था, वैसा ही होना ।

विजय—कल्पक्षणत्व किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—रासकी रात्रि ब्रह्माकी एक रात्रिके समान लम्बी हुई थी, फिर भी गोपियोंको वह ब्रह्मरात्रि क्षणभरके समयसे भी अल्प लगी थी, ऐसे भावको कल्पक्षणत्व कहते हैं ।

विजय—श्रीकृष्णके सुखी रहने पर भी उनके कष्टकी आशङ्कासे खिन्न होनेका उदाहरण देकर समझाइये ।

गोस्वामी—'यत्ते सुजातचरणाम्बुरुह' श्लोकमें गोपियोंने जैसे श्रीकृष्णके चरणकमलोंको अपने स्तनों पर धारण करके भी यह सोचकर बड़ी दुःखी हुई थीं कि हमारे स्तन तो कठोर हैं, अतएव कृष्णको अपने अतीव कोमल चरणकमलोंको उन पर रखनेसे कष्ट होता होगा । ऐसे खेद करनेको 'सुखमें भी आर्त्ति शङ्कासे खिन्नत्व' कहते हैं ।

विजय—मोहके अभावमें भी सर्व विस्मरण कैसा होता है ?

गोस्वामी—कृष्णकी हृदयमें स्फूर्त्ति होनेसे सब प्रकारके मोह आदि दूर हो जाते हैं—मोहका अभाव होता है । परन्तु ऐसी अवस्था जिसमें कृष्ण-स्फूर्ति भी रहती है, साथ ही देह आदि समस्त जगत्की सुध-बुध नहीं रहती ।

विजय—क्षण कल्पता किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—कृष्ण उद्धवसे गोपियोंकी विरह-दशाका वर्णन करते हैं—उद्धव ! जब मैं व्रजवासियोंके साथ वृन्दावनमें था, उस समय मेरे साथ उनकी रातें एक क्षणके समान कट जाती थी । मेरे वियोगमें वही रातें उनके काटे भी नहीं कटती थीं—एक कल्पके समयसे भी अधिक लम्बी जान पड़ती थीं । इसी रूपसे एक क्षण भी कल्पके समान जान पड़ता है ।

विजय—रूढ़ महाभाव समझ गया, अब अधिरूढ़ भावकी व्याख्या करें ।

गोस्वामी—जब अनुभाव समूह रूढ़ महाभावमें व्यक्त हुए अनुभावोंसे भी अधिक आश्रय विशेषता को प्राप्त होते हैं, वही अधिरूढ़ महाभाव है ।

विजय—अधिरूढ़ कितने प्रकारके होते हैं ?

गोस्वामी—दो प्रकारके होते हैं—मोदन और मादन ।

विजय—मोदन किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—जिस अधिरूढ़ महाभावमें नायक और नायिकामें सात्त्विकभाव समूह अत्यन्त अधिक रूपमें उदीप्त हो उठे, उसे मोदन कहते हैं । उस मोदन भावमें कृष्ण और राधाको विक्षोभ और भय सा होता है और प्रेम रूप महासम्पत्तिके विषयमें सुप्रसिद्धा श्रीगौरि आदि नारियोंसे भी अधिक प्रेम प्रकाशित होता है ।

विजय—मोहनका स्थल वर्णन करें ।

गोस्वामी—श्रीराधिकाके युथके सिवा मोदन दूसरी जगह प्रकाशित नहीं होता । मोदन एकमात्र ह्लादिनी शक्तिका प्रियवर सुविलास है । किसी विशेष दशामें (विशेष विरहमें) मोदन ही मोदन हो जाता है । विरह विवशताके कारण उसी दशामें सुदीप्त सात्त्विक भावसमूह उदित होते हैं ।

विजय—मोहन अवस्थाके अनुभावोंका वर्णन कीजिए ।

गोस्वामी—अन्य कान्ता द्वारा आलिंगन किये

गये कृष्णकी मूर्च्छा (द्वारकामें रुक्मिणी द्वारा आलिंगन किये जाने पर यमुनातीरवर्ती वृन्दानस्थित निकुंजोंमें राधा के साथ केलि विनोद आदि का स्मरणकर कृष्ण का मूर्च्छित होना) स्वयं असह्य दुःख स्वीकार करके भी कृष्ण-सुख की अभिलाषाका होना, ब्रह्माण्डक्षोभकारिता, पशु-पक्षी आदिका रोदन, मरण स्वीकार करके भी अपने शरीरके पंचभूतों द्वारा (मिट्टी आदि द्वारा) श्रीकृष्ण संग की प्रबल तृष्णा और दिव्योन्माद आदि अनेक अनुभाव उदित होते हैं। श्रीवृन्दावनेश्वरीमें यह मोदन भाव उदित होता है। संचारीभावगत मोदकी अपेक्षा भी इस मोहनभावकी सर्वतोभावसे विलक्षण महाचमत्कारकारी महाभाव प्रकाशित होता है।

विजय-प्रभो ! यदि उचित समझें तो दिव्योन्माद का लक्षण बतलाने की कृपा करें।

गोस्वामी-किसी अनिर्वचनीय वृतिविशेषको प्राप्त अर्थात किसी विशेष दशामें मोहन भाव भ्रम जैसी कोई विचित्र दशाको प्राप्त होने पर दिव्योन्माद होता है। इसके उद्घुर्णा और त्रिविजल्पादि अनेकों भेद हैं।

विजय—उद्घुर्णा किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—दिव्योन्मादमें अनेक प्रकार अद्भुत विवशतारूप चेष्टाओंका प्रकाश पाना ही उद्घुर्णा है। कृष्ण मथुरा चले जानेपर राधिकाको उद्घूर्णा हुई थी। उस समय राधा-कृष्ण विरहके कारण भूली हुई जैसी होकर कृष्ण अभी आ रहे हैं—ऐसा मानकर कुंज भवन में सेज लगाती हैं, कभी खण्डिता रूपमें नील मेघको धमकाती हैं और कभी रातके घने अंधकारमें शीघ्रतापूर्वक अभिसारिणी होकर घूमती हैं।

विजय—चित्रजल्प किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-अपने प्रेमीके किसी सुहृद (बन्धु) के साथ भेंट होने पर गूढ़ रहस्यपूर्ण गर्व, असूया, ईर्ष्या, चापल्य और उत्सुक्यादि भावसे तथा तीव्र-उत्कंठा-पूर्वक जो आलाप (बातचीत) होता है, उसे चित्रजल्प कहते हैं।

विजय—चित्रजल्पके कितने अङ्ग हैं ?

गोस्वामी-प्रजल्प, परिजल्पित, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, अतिजल्प और सज्जल्पके भेदसे चित्रजल्प के दस अङ्ग हैं। श्रीमद्भागवत दसवें स्कन्ध के भ्रमर—गीतमें इनका वर्णन पाया जाता है।❀

विजय-प्रजल्प किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-असूया, ईर्ष्या और मदयुक्त अवज्ञाकी भावभङ्गीसे प्रियव्यक्तिके अकौशल (अविचक्षणता) अर्थात् अनिपुणता प्रकाश करनेको 'प्रजल्प' कहते हैं।

विजय—परिजल्पित किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-प्राणधनकी निर्दयता, शठता और चपलता आदि दोषों का प्रतिपादन करते हुए भंगी द्वारा अपनी निपुणता प्रकाश करनेको परिजल्पित कहते हैं।

विजय—विजल्प किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-हृदयमें गूढ़ मानमुद्रा है, परन्तु ऊपरसे कृष्णके प्रति असूयायुक्त (द्वेष जैसा) कटाक्षोक्तिको 'विजल्प' कहते हैं।

विजय-उज्जल्प किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—गर्वमूलक ईर्ष्या द्वारा कृष्णकी शठता, कपटता आदि को कहना। असूया के साथ सदा आक्षेप भी रहता है, यही वे उज्जल्प है।

विजय-संजल्प किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—किसी भी अनिर्वाच्य दुर्गम सोलुंठ-अर्थात् गूढ़ परिहास आक्षेप द्वारा-भंगीद्वारा कृष्णकी अकृतज्ञता, कठिनता और शठता आदि स्थापन करने को संजल्प कहते हैं।

विजय-अवजल्प किसे कहते हैं ?

गोस्वामी-कृष्णके प्रति काठिन्य, कामित्व और धूर्तताका दोष लगाकर अपनी आसक्तिकी विवशताको ईर्ष्या से युक्त भय साथ व्यक्त करने को अवजल्प कहते हैं।

❀श्रीमद्भागवत दसवाँ स्कन्ध ४७ वाँ अध्याय और वैष्णवतोषणी द्रष्टव्य है। साथ ही श्रीचैतन्यचरितामृत अन्तलीला १९ अध्याय और अनुभाष्य भी आलोच्य है।

विजय—अभिजल्प किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—'कृष्ण यदि पक्षियोंको भी खेद (विरह-दुःख) प्रदान करते हैं, तब उनके प्रति आसक्ति व्यर्थ है'—इस प्रकार भर्गीद्वारा अनुताप वचनों को अभिजल्प कहते हैं।

विजय—आजल्प किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—निर्वेदवशतः कृष्णकी कपटता, दुःख-दायकत्व को व्यक्त करना और कृष्णकी लीलाकथा का त्यागकर दूसरी कथाओंको सुखदायक बतलाना ही 'आजल्प' है।

विजय—प्रतिजल्प किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—'कृष्णका मिथुनीभाव दस्युभाव है। अतएव अन्य रमणियों के साथ वर्तमान अवस्थामें हमें उनसे मिलनेके लिये वहाँ जाना अयुक्ति-संगत है'—इस प्रकार कहना और प्रेरित दूतके प्रति सम्मान का भाव दिखलाना ही 'प्रतिजल्प' है।

विजय—सुजल्प किसे कहते हैं ?

गोस्वामी—जब सरलताके कारण गांभीर्य, दैन्य, चापल्य और उत्कंठाके साथ कृष्णके विषयमें प्रश्न होता है, तो उसे 'सुजल्प' कहते हैं।

विजय—प्रभो ! क्या मैं मादनका लक्षण जानने योग्य हूँ ?

गोस्वामी—ह्लादिनीका सार स्वरूप प्रेम जब महा-भाव से भी बढकर अतिशय उन्नत अवस्थाको प्राप्त होता है तथा सबप्रकारके भावोंके प्रकाश द्वारा उल्लास-युक्त होता है, तब वह परात्परभावरूप 'मादन' कहा जाता है। यह मादन केवल श्रीराधामें ही नित्यकाल विराजमान होता है। यह ललिता आदि तकमें उदय नहीं होता।

विजय—क्या मादन भावमें ईर्ष्या होती है ?

गोस्वामी—मादन भावमें ईर्ष्याभाव अत्यन्त प्रबल होता है। ईर्ष्याके अयोग्य चेतनाशून्य वस्तुके प्रति भी ईर्ष्या देखी जाती है और सदा संयोग में रहने पर भी कृष्ण सम्बन्धका गंध जिन पात्रोंमें उनका स्तव आदि करना भी प्रसिद्ध है। जैसे श्रीमती राधाका कृष्णकी वनमाला के प्रति ईर्ष्या तथा उनका पर्वतीय रमणियों—पुलिन्दियों के प्रति स्तव ही इसका उदाहरण-स्थल है।

विजय—किस दशामें मादन उदय होता है ?

गोस्वामी—मादन रूप विचित्रभाव केवल मिलन में ही उदित होता है। इस मादनकी विलासरूप नित्यलीला अगणित रूपोंमें विराज करती है।

विजय—प्रभो ! क्या किसी मुनिकी वाणीमें इस प्रकारके मादन का वर्णन पाया जाता है ?

गोस्वामी—मादन रस अनन्त है। अतएव उसकी सम्पूर्ण गति अप्राकृत मदन रूप श्रीकृष्णके लिये भी दुर्गम है। इसीलिये श्रीशुकमुनि भी इसका सम्यक् वर्णन नहीं कर सके हैं, फिर रस विचारक भरतमुनि आदि की तो बात ही क्या है।

विजय—बड़े आश्चर्यकी बात आपने बतलायी। रस-स्वरूप और रसके भोक्तृस्वरूप स्वयम् कृष्ण भी सम्पूर्णरूपसे मादनकी गति नहीं जानते, यह कैसे संभव है ?

गोस्वामी—कृष्ण ही रस हैं। वे अनन्त, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं। उनसे कुछ भी छिपा नहीं है अथवा उनके लिये कुछ भी अप्राप्य या अघटनीय नहीं है। वे अचिन्त्य भेदाभेद धर्मवशतः नित्य ही एक रस और अनेक रस भी हैं। एक रस से वे सब कुछ आत्मसात कर आत्माराम हैं। इस दशामें उनसे पृथकरूपमें कुछ भी रसरूपमें नहीं रहता। पुनः वे युगपत् (उसी समय) अनेक रस भी हैं। अतएव आत्मगत रस के अतिरिक्त उस दशामें परगतरस और आत्मपर मिश्रित विचित्र रस होता है। शेषोक्त दोनों प्रकारके रसोंका अनुभव ही उनका लीलासुख है। परगत रस ही चरम विस्तार लाभ करने पर पारकीय रस होता है। वृन्दावनमें यह चरम विस्तृति अत्यन्त प्रस्फुटित है। अतएव वह आत्मगत रसके लिये अपरिज्ञात परम सुखविशिष्ट पारकीय रस ही मादनकी सीमा है। यह विशुद्ध रूपसे अप्रकट लीला के समय गोलोकसे वर्त्तमान होता है। किंचित रूपमें वह प्रत्यायित अवस्थामें व्रजमें भी वर्त्तमान होता है।

विजय—प्रभो ! मेरे प्रति आपकी असीम कृपा है। अब कृपाकर संक्षेपमें समस्त प्रकारके मधुर रसों का सार बतलावें, जिसे मैं सहज ही समझ सकूँ।

गोस्वामी—व्रजदेवियोंमें उदित होनेवाले भाव समूह सर्वथा अलौकिक और तर्कके परे होते हैं। इसलिये विचारपूर्वक उन भावोंको बतलाना कठिन ही नहीं, असंभव है। शास्त्रमें ऐसा कहा गया है कि श्रीराधिकाका राग पूर्वरागसे प्रकट हुआ था। वही राग किसी विशेष दशामें अनुराग और अनुरागसे फिर स्नेह होता है। पुनः वही मान और प्रणयके रूपमें प्रकाशित होता है। ये सब बातें स्थिर नहीं होतीं; परन्तु यह निश्चित है कि साधारणी रतिमें धुमायित अवस्था ही सीमा है। स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग तक समञ्जसाकी गति होती है। उसमें ज्वलितारूपमें दीप्तारति होती है। रूढ़में उदीप्ता रति होती है तथा मोदन आदिमें सुदीप्ता रति होती है। इसे भी प्रायिक (कभी कभी ऐसा होता है) ही समझना। क्योंकि देश, काल और पात्र आदिके भेद से इस विधिमें उलट-फेर भी होता है। साधारणी रति प्रेम तक जाती है। समञ्जसा रतिकी सीमा अनुरागतक है तथा समर्था रतिकी सीमा महाभाव तक है।

विजय—सख्य रसमें रतिकी गति कहाँ तक है ?

गोस्वामी—नर्मवयस्योंकी रति अनुराग तक पहुँचती है। परन्तु उनमें सुबल आदिकी रति महाभाव की सीमाको प्राप्त होती है।

विजय—स्थायी भावका लक्षण जिसे आपने पहले बतलाया था, उसी लक्षणको महाभाव तक देखता हूं। स्थायी भाव तो नीचेसे ऊपर तक एक ही तत्त्व है, फिर रसभेद क्यों देखा जाता है ?

गोस्वामी—स्थायीभावके जातिभेदसे रसभेद पैदा होता है। स्थायी भावमें गूढ़ व्यापार लक्षित नहीं होता। जब उसके साथ सामग्रीका संयोग होता है तभी उसमें जातिभेद लक्षित होता है। स्थायीभाव अपनी गूढ़जातिके अनुसार तदुपयोगी सामग्री संग्रहपूर्वक उसीके अनुरूप रसताको प्राप्त होता है।

विजय—क्या मधुर रतिमें स्वकीय और परकीय जातिभेद नित्य है ?

गोस्वामी—हाँ ! उसमें नित्य स्वकीय और परकीय जातिभेद है ! वैसा भेद औपाधिक नहीं है। यदि उस भेदको औपाधिक माना जाता है, तब मधुर आदि रसोंको भी औपाधिक ही मानना पड़ेगा। जिसका जो नित्य स्वाभाविक रस है, वही उसका नित्यजातिगत रस है। उसीके अनुरूप उसकी रुचि होती है, वैसा ही भजन होता है तथा उसकी प्राप्ति भी वैसी ही होती है। व्रजमें भी स्वकीय रस है। जो कृष्णमें पति भावना रखती हैं, उनकी रुचि,साधन भजन और प्राप्ति तदनुरूप होती है। द्वारकाकी स्वकीयता वैकुंठगत तत्व है। परन्तु व्रजकी स्वकीयता गोलोकगत तत्त्वहै। दोनोंमें भेद हैं। अथवा व्रजनाथ के अन्तःस्थित वासुदेव सम्बधित वह स्वकीय तत्त्व अपनी चरम अवस्थामें वैकुंठको ही जाता है—ऐसा समझना।

इतना सुनकर विजय श्रीगुरुदेवको प्रणाम कर महाप्रेममें विभोर होकर घर लौटे।

श्रद्धालु पाठकों की सेवाका सौभाग्य

श्रीभागवत्-पत्रिकाके स्नेही सदस्य अब तक इस पत्रिकाकी यथा शक्ति सेवा करते आ रहे हैं और इस पत्रिका का उपयोग वे अपने जीवन में गम्भीर अध्ययन एवं आचरणके द्वारा स्वयं जान रहे हैं, प्रस्तुत पत्रिकामें आजके इस युगका जनकल्याण निहित है तथा ऐसी दुर्दशापूर्ण कलियुगकी शांति अपेक्षित है। अतः कृपालु पाठकों से निवेदन है कि वे इस युगके पारमार्थिक क्षेत्रमें थोड़ा अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेते हुए कमसे कम एक ग्राहक बनाकर श्रीभागवत-पत्रिका की सेवा अवश्य करें।

—प्रकाशक

श्रीश्रीनवद्वीप-धामपरिक्रमा और श्रीश्रीगौरजन्मोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति पिछले बीस वर्षोंसे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपसे श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सवका विराट अनुष्ठान प्रत्येक वर्ष बड़े समारोहसे सम्पन्न करती आरही है। समितिने श्रीआचार्यदेवकी अध्यक्षतामें सर्व-प्रथम १८६३ शकाब्द (सन् १९४२ ई०) में धाम-परिक्रमाका आरम्भ किया। तबसे आज तक प्रतिवर्ष की जाती है। जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वतीने सन् १९१५ ई० से आरम्भ कर १९३६ ई० तक (अपने अप्रकट होनेके पूर्व तक) लगातार २२ वर्षों तक श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा और श्रीगौर-जन्मोत्सव किये थे। श्रीप्रभुपादके अप्रकट होने पर श्रीगौड़ीय मठके जो बुरे दिन आये, उसके फल स्वरूप धाम-परिक्रमा बंद होगयी थी, जिसे श्रीप्रभुपादके प्रियपार्षद, उनके मनोभिष्ट पूर्ण करने वाले ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति रूप शुद्धभक्ति प्रतिष्ठानकी स्थापनाकर पुनः प्रकाशित किया है। देखा देखी आज विभिन्न गौड़ीय मठोंके द्वारा भी धाम-परिक्रमाकी जाती है।

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी १३ फाल्गुन शनिवारसे १७ फाल्गुन बुधवार तक पाँच दिनोंमें श्रीनवद्वीप मण्डलके नौ द्वीपोंकी परिक्रमा सुसम्पन्न हुई है। वर्षाके कारण सर्वत्र जमीन गीली रहनेके से इस वर्ष भी शिविरकी व्यवस्था नहीं की जा सकी। फिर भी दूर वाले स्थानोंमें दोपहरके प्रसाद आदिकी व्यवस्थासे यात्रियोंको बड़ा आराम रहा है। मौसम भी अनुकूल रहा। इस प्रकार सब दृष्टिसे इस वर्षकी परिक्रमा सफल रही है।

त्रिदण्डि संन्यासियोंकी परिचालनामें—उनके हरिकथाकीर्तनके प्रभावसे यात्रियोंकी संख्या २०००से २५०० तक होने पर भी परिक्रमा बड़ी सुचारु रूपसे सम्पन्न हुई है। परिक्रमामें सम्मिलित होनेवाले त्रिदण्डि संन्यासियोंके नाम ये हैं—(१) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन महाराज, (२) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परिव्राजक महाराज, (३) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त शुद्धाद्वैत महाराज, (४) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज, (५) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज, (६) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, (७) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज, (८) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराज और (९) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त विष्णुदैवत महाराज। श्रीपाद त्रिविक्रम महाराज जीने परिक्रमा संघका परिचालन किया।

१२ फाल्गुन रविवारको परिक्रमा अधिवासके उपलक्षमें कीर्तन और श्रीआचार्यदेवका भाषण हुआ।

परिक्रमाके प्रथम दिन १३ फाल्गुनको प्रातःकाल श्रीमन्महाप्रभुके विजय विग्रह रत्न मन्डित पालकी पर पधराये जाने पर परिक्रमा-संघ संन्यासीवृन्दकी संचालकतामें देवपल्लीके लिये रवाना हुआ। पालकीके अगल-बगल चँवर, पंखा और छत्र लेकर ब्रह्मचारीवृंद चल रहे थे।

पालकीके पीछे त्रिदण्ड धारण किये हुए संयासियों की पंक्तियाँ अतीव मनोरम लगती थीं। इनके पीछे संकीर्तन मण्डली और उनके पीछे नर-नारियों का विराट-समुदाय। बीच-बीच में विभिन्न रंगोंकी ध्वजा-पताकाएँ शोभित हो रही थीं। मेघ गर्जन को भी लज्जित करने वाली मृदंग आदि वाद्योंकी ध्वनिसे भक्तों का हृदय थिरक उठता—ताल-स्वरके साथ सारा जन-समूह एक साथ नृत्य कर उठता। संकीर्तन की ध्वनिसे दिग्-दिगन्त मुखरित हो उठता। इस प्रकार परिक्रमा-संघ सुरसरिका पार कर सुरभिकुंज स्वानंदा सुखदकुंज, सुवर्ण-विहार, हरिहर क्षेत्र, महावराणसी का दर्शन करतेहुए दोपहरमें श्रीनृसिंहदेवपल्लीमेंपहुँचा दोपहरका भोजन कर तथा वहीं कुछ देर विश्रामकर शाम को हाट डांगा, श्रीब्राह्मणपुष्कर, हंसवाहन, सप्तर्षिटीला और नैमिषारण्यका दर्शन कर संघ श्री-देवानन्द गौड़ीयमठमें लौट आया।

दूसरे दिन ऋतुद्वीपमें समुद्रगढ़ और चम्पक हट्टकी परिक्रमा हुई।

तीसरे दिन जह्नुद्वीपमें जान्नगर (जह्नु मुनिकी तपस्या का स्थान) विद्यानगर तथा मोदद्रुम द्वीपके दर्शनीय स्थानों के दर्शन किये गये।

चौथे दिन कुलिया पहाड़, प्रौढ़ामाया, श्रीजगन्नाथ दास बाबाजीकी समाधि और रुद्रद्वीप की परिक्रमा हुई।

पाँचवें दिन श्रीश्री गौरजन्मोत्सवके पूर्व दिन श्रीधाम मायापुरकी परिक्रमा के दिन परिक्रमा संघ की शोभा यात्राने विराट रूप धारण किया। परिक्रमा संघ पुण्य सलीला भगवती भागीरथी को पार कर श्रीमायापुरकी ओर अग्रसर हुआ। आज श्रीश्री आचार्यदेव भी सुन्दर सजे हुए रथ पर परिक्रमा संघ के आगे २ चल रहे थे। गंगाके घाटसे लेकर श्रीमाया पुर तक सम्पूर्ण मार्ग अपार जन-समूहसे भर गया धीरे-धीरे परिक्रमा संघ श्रीमन्महाप्रभुजीके आविर्भाव स्थान श्रीयोगपीठ में उपस्थित हुआ। वहाँ उद्दण्ड नृत्य-गीतके बीच श्रीमन्दिरकी परिक्रमाके पश्चात् त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने बड़े ही मधुर कंठसे प्रार्थनामूलक एक सुन्दर पदका कीर्तन किया। उसके पश्चात् श्रीआचार्यदेवने बड़ा ही मर्मस्पर्शी और पाण्डित्यपूर्ण भाषण दिया। फिर 'श्रीनवद्वीपधाम माहात्म्य' नामक ग्रन्थसे श्री-गौरजन्म स्थान का माहात्म्य श्रवण करनेके पश्चात् संघ वहाँ पर श्रीजन्मस्थान, श्रीवासअंगन, श्रीअद्वैत भवनकी परिक्रमा और दर्शन करके जगद्गुरु श्रीप्रभु-पाद के समाधि स्थानमें उपस्थित हुआ।

समाधि मंदिरमें आचार्यदेवने जगद्गुरु श्रीश्री सरस्वतीठाकुर 'श्रीश्रीप्रभुपादकी' जीवनी और प्रचार वैशिष्ट्यके सम्बध में एक बड़ा ही ओजस्वी भाषण प्रदान किया। इसके पश्चात् श्रीचैतन्यमठके अविद्या-हरणनाट्य मंदिरमेंभी श्रीश्रीआचार्यदेवने चार-वैष्णव सम्प्रदाय तथा उनके विचारों पर सुन्दर रूपसे प्रकाश डाला। अनन्तर श्रीगौरकिशोर बाबाजी महाराजकी समाधि तथा श्रीमन्महाप्रभुके प्रिय भक्त श्रीचांदकाजी की समाधिका दर्शन कर परिक्रमा संघ श्रीजयदेव गोस्वामी के भजन स्थान पर उपस्थित हुआ। आज मध्याह्नकी महाप्रसाद-सेवा यहीं हुई। यहाँ पर आस पास के ग्रामीण आदि सबको मिलाकर लगभग ५००० लोगों को महाप्रसाद दिया गया। शामको परिक्रमा संघ नवद्वीपमें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठको लौट आया।

१८ फाल्गुन बृहस्पतिवारको श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्य में मठ-प्रांगण और श्रीमंदिर रंग-बिरंगी पताकाओं, बन्दनवारों, कदली खम्भों तथा आम्र पल्लवोंसे आकर्षक ढंगसे सजाया गया था। मंगलारति कीर्तनके पश्चात् सूर्योदयसे ही श्रीचैतन्य भागवतका पारायण आरम्भ हुआ, जो आविर्भावकाल—संध्या तक लगातार चलता रहा। इसी दिन चन्द्रग्रहण भी था। लाखों लोग 'हरिबोल' 'हरि बोल' की ध्वनि के साथ गंगा स्नान करने जा रहे थे। नवद्वीप के सारे घाटों पर बड़ी भीड़ होगई थी।

श्रीश्रीगौरजन्मोत्सव

संध्या होते-होते मठका विराट प्रांगण दर्शकों एवं श्रोताओंसे खचाखच भर गया। उपयुक्त समय पर श्रीचैतन्यचरितामृत से श्रीगौराविर्भाव का कीर्तन प्रारम्भ होने पर विराट रूपमें भोग राग और अर्चन-पूजन की व्यवस्था चलने लगी। फिर संध्यारति और श्रीतुलसी परिक्रमाके पश्चात् श्रीश्रीआचार्यदेव के सभापतित्व में एक बड़ी सभा का आयोजन हुआ, जिसमें नवीन संन्यासियों तथा दूसरे-दूसरे वक्ताओंने 'श्रीमन्महाप्रभु और उनकी शिक्षा' के सम्बन्धमें भाषण दिये। इनमें से त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीमद्भक्ति-वेदान्त नारायण महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराज और श्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णुदैवत महाराज के नाम उल्लेख योग्य हैं। सबके अन्तमें श्रीश्रीआचार्य-देवका भाषण हुआ। दूसरे दिन साधारण महोत्सव हुआ। ६ बजे दिन से आरम्भ कर रात के १० बजे तक कई हजार लोगोंको विचित्र प्रसाद वितरण हुआ।

त्रिदण्ड-संन्यास

पाठकोंके निकट यह संवाद देनेमें हमें बड़ाहर्ष हो रहा है कि गत १८ फाल्गुन, बृहस्पतिवार को श्रीश्री-गौर-आविर्भावके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके नवद्वीप शाखा श्रीदेवानन्द गौड़ीयमठ में उक्त समिति के प्रतिष्ठाता परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके निकट श्रीदेवानन्द गौड़ीयमठके मठ-रक्षक श्रीपाद प्रबुद्ध कृष्ण दासाधि-कारी, श्रीगोलोक गंज गौड़ीय मठके मठ-रक्षक श्रीपाद सुदाम सखा ब्रह्मचारी और समितिके प्रचारक श्रीपाद श्रीनिवास प्रभुने त्रिदण्डि-यति का वेश ग्रहण किये हैं। इनके नाम क्रमशः त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति-वेदांत हरिजन महाराज, त्रिदण्डिस्वामीश्रीमद्भक्तिवेदांत सज्जनमहाराज तथा त्रिदण्डि स्वामीश्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णुदैवत महाराज हुए हैं।

उपरोक्त त्रिदण्डि महोदयोंका पूर्व जीवन आदर्श, गुरु-सेवा और भगवत-सेवामय रहा है। अगली संख्या में इनके आदर्श सेवामय जीवन पर प्रकाश डाला जायगा। इन्होंने स्वाभाविक रूपसे अपने-अपने तन, मन और वचनको दण्डित कर उन्हें श्रीभगवत-सेवामें सदा के लिये नियुक्त किया है। वास्तवमें ये परम सौभाग्यशाली हैं।

---

* नम्र-निवेदन *

श्रीगौड़ीय वेदांत समिति तथा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ के मुखपत्र श्रीभागवत पत्रिका की वर्तमान संख्या ९ और १० एक साथ सम्मिलित रूपमें प्रकाशित हो रही हैं। इसका कारण यह है कि पिछले माह श्रीगौराविर्भाव तिथि के उपलक्ष्यमें श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमा का सप्ताह कालीन विराट आयोजन सम्पन्न हुआ था। इस आयोजनमें भारतवर्षके विभिन्न प्रदेशों के भक्त उपस्थित हुए थे। सम्पादक महोदय के भाग लेने तथा मुद्रण संबंधी कुछ कठिनाइयों के कारण वर्तमान संख्या यथा समय पर प्रकाशित न हो सकी। इसके लिए हम पाठकों के निकट क्षमाप्रार्थी हैं।

—प्रकाशक

श्रीगौड़ीय व्रतोपवास

[चैत]

१९ विष्णु,	७ चैत्र,	२१ मार्च,	मंगलवार—श्रीरामानुजाचार्य का आविर्भाव।
२३ ,,	११ ,,	२५ ,,	शनिवार—**श्रीरामनवमी व्रतोपवास,** श्रीरामचन्द्रजी का जन्मोत्सव—दोपहर में जन्म।
२४ ,,	१२ ,,	२६ ,,	रविवार—पूर्वाह्न ९।४१ के पहले श्रीरामनवमी व्रत का पारण।
२६ ,,	१४ ,,	२८ ,,	मंगलवार—**व्यंजुली महाद्वादसी का उपवास।**
२७ ,,	१५ ,,	२९ ,,	बुधवार—प्रातः ६।५८ के पहले व्यंजुली महाद्वादसी का पारण। श्रीकृष्ण का दमन कारोपण उत्सव।
३० ,,	१८ ,,	१ अप्रैल,	शनिवार—पूर्णिमा। श्री बलदेव की रास-यात्रा। श्रीवंशी बदनानन्द ठाकुर और श्रीश्यामानन्द प्रभु का आविर्भाव।
१० ,,	२८ ,,	११ ,,	मंगलवार—**वरूथिनी एकादशी का उपवास।**
११ ,,	२९ ,,	१२ ,,	बुधवार—पूर्वाह्न ९।३२ के पहले एकादशी का पारण।
१२ ,,	३० ,,	१३ ,,	बृहस्पतिवार—श्रीकेशव व्रत आरम्भ। तुलसी में जलधारा दान।

[वैसाख]

१४ मधुसूदन	२ वैसाख	१५ अप्रैल	शनिवार—श्रीगदाधर पण्डित का आविर्भाव।
१७ ,,	५ ,,	१८ ,,	मंगलवार—**अक्षय तृतीया। पुरीमें श्रीजगन्नाथदेवकी चंदन यात्रा आरंभ। बद्रीनारायणजी का द्वार खुलना। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति का प्रतिष्ठा दिवस।** उक्त समिति के निष्ठ समस्त शाखा मठोंमें महोत्सव।
२३ ,,	११ ,,	२४ ,,	सोमवार—श्रीनित्यानन्द शक्ति जाह्नवीदेवी और श्रीरामशक्ति सीता-देवी का आविर्भाव। श्रीमधुपण्डित का तिरोभाव।
२५ ,,	२३ ,,	२६ ,,	बुधवार—**मोहिनी एकादशी का उपवास।**
२६ ,,	१४ ,,	२७ ,,	बृहस्पतिवार—पूर्वाह्न ९।२६के पूर्व एकादशीका पारण। रुक्मिनी द्वादसी
२८ ,,	१६ ,,	२९ ,,	शनिवार—**श्रीश्रीनृसिंह चतुर्दशी व्रत और उपवास।**
२९ ,,	१७ ,,	३० ,,	रविवार—पूर्वाह्न ९।२५ के पूर्व श्रीनृसिंह चतुर्दशी का पारण। श्रीश्रीनिवास आचार्यका आविर्भाव। श्रीपरमेश्वरीदास ठाकुर और श्रीमाधवेन्द्र पुरकीपाद का तिरोभाव।
५ ,,	२२ ,,	५ ,,	शुक्रवार—श्रीरायरामानन्द का तिरोभाव।
११ ,,	२८ ,,	११ ,,	बृहस्पतिवार—**अपरा एकादशी का उपवास।**
१२ ,,	२९ ,,	१२ ,,	शुक्रवार—पूर्वाह्न ९।२२ के पहले एकादशी का पारण।
१४ ,,	३१ ,,	१४ ,,	रविवार—श्रीकेशव व्रत समाप्त। रात के ९।५१ के पश्चात् पुरुषोत्तम आरम्भ, या मलमास प्रवृति। **श्रीपुरुषोत्तम व्रत आरम्भ।**

श्रीश्रीव्यास-पूजा

पिछले २८ माघ शुक्रवार २३ माघ सोमवार—४ दिनों तक श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके समस्त शाखा-मठोंमें श्रीश्रीव्यासपूजा या श्रीश्रीगुरुपूजाका अनुष्ठान खूब धूम-धामसे सम्पन्न हुआ है। श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चूचूड़ामें समितिके आचार्य परमाराध्यतम परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके स्वयं उपस्थित रहनेके कारण वहाँ पर यह उत्सव विशेष समारोह के साथ मनाया गया है।

२० माघ शुक्रवार, कृष्ण तृतीयाको जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान गोस्वामी महाराजकी शुभाविर्भाव तिथिकी पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीउद्धारणगौड़ीय मठमें श्रद्धालु भक्तोंने, श्रीश्रीगुरुपाद पद्मके द्वारा (अपने आविर्भावके दिन) अपने श्रीश्रीगुरुपाद पद्मको पूजा करने तथा उनके द्वारा उनके श्रीश्रीगुरुपादपद्मके चरणोंमें पुष्पांजलि प्रदानके पश्चात् पहले श्रीश्रीगुरु पद्मोंमेंपीछे श्रीपरमगुरुके चरण कमलोंमें पुष्पांजलि प्रदान की। जो लोग दूर प्रदेशों में रहनेके कारण वहाँ उपस्थित न हो सके थे, उन्होंने पत्र द्वारा पद्य या गद्यके माध्यमसे जो पुष्पांजलियाँ भेजी थीं, वे उनके चरणकमलोंमें अर्पित की गयीं।

दूसरे और तीसरे दिन श्रीमद्भागवत और चैतन्य-चरितामृत का प्रवचन हुआ। चौथे दिन जगद्गुरु ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीके आविर्भावके दिन श्रीश्रीआचार्य देवके पौरोहित्यमें पुष्पांजलि दिये जाने के पश्चात् शामको एक सभाका आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न भाषाओंमें लिखित अभिनन्दन पढ़े गये। अन्तमें श्रीआचार्यदेवने श्रीश्रीप्रभुपादजीकी अतिमर्त्य जीवनी और उनकी शिक्षाओं पर बड़ाही प्रभावशाली भाषण दिया। उपस्थित सैकड़ों व्यक्तियों को विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया।

—निजस्व सम्वाद

'श्रीभागवत-पत्रिका' के सम्बन्धमें विवरण

१. प्रकाशन का स्थान—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा

२. प्रकाशनकी अवधि—मासिक

३. मुद्रकका नाम—श्रीहैमेन्द्र कुमार

राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (भारतीय)

पता—साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा।

४. प्रकाशकका नाम—श्रीरसराज ब्रजवासी

राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू, सारस्वत गौड़ीय ब्राह्मण

पता—श्रीकेशवजी गौड़ीयमठ, मथुरा

५. सम्पादकका नाम—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज.

राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू, सारस्वत गौड़ीय ब्राह्मण

पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा

६. पत्रिकाका स्वत्त्वाधिकारी—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तरफसे उसके प्रतिष्ठाता और नियामक परमहंस स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज। समिति अनरेजिस्टर्ड।

मैं, रसराज ब्रजवासी, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारीमें और विश्वासके अनुसार सत्य हैं।

रसराज ब्रजवासी
प्रकाशक

१४ मार्च १९६१